इकाई-III

कौटिल्य अर्थशास्त्र

आचार्य कौटिल्य द्वारा विरचित अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ राजनीति और अर्थशास्त्र का ऐसा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें ईसा से तीन शताब्दी पूर्व के एतद्विषयक भारतीय चिन्तन की पराकाष्ठा के दर्शन होते हैं। हमारे प्राचीन चिन्तन के बारे में पाश्चात्त्य विद्वानों का सामान्यतः यही मानना था कि भारत ने विचार क्षेत्र में तो प्रगति की है, लेकिन क्रिया क्षेत्र में बुरी तरह असफल रहा है, लेकिन कौटिल्य के अर्थशास्त्र के आधार पर सिद्ध हो जाता है कि हम भारतीय प्राचीन काल में विचार क्षेत्र के साथ कार्य क्षेत्र में भी निपुण थे। इस अर्थशास्त्र में राज्य-प्रबन्ध सम्बन्ध समस्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषय वर्णित है; जिनका अध्ययन-मनन करके भारतीय राजनीतिज्ञ ही नहीं बल्कि संसार के राजनीतिज्ञ तथा कूटनीतिज्ञ भी आश्चर्यचकित हो जाते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र की सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि इसमें सिद्धान्त एवं क्रिया का समन्वित रूप मिलता है चाणक्य अर्थशास्त्र में नीति सम्बन्धी अत्यन्त उत्कृष्ट श्लोक सरल भाषा-शैली में निबद्ध हैं। अर्थशास्त्र यद्यपि राजनीति सम्बन्धी ग्रन्थ है, फिर भी इसमें व्यावहारिक सामान्य नीति सम्बन्धी शाश्वत सत्य के द्योतक श्लोक मिलते हैं। इसी कारण आज इस ग्रन्थ का महत्व ग्रीक के अरस्तु अथवा अफलातून के ग्रन्थों से भी अधिक है।

अर्थशास्त्र के कर्त्ता और उनका समय

राजनीति सम्बन्धी ज्ञान के भण्डार अर्थशास्त्र के लेखक सम्राट चन्द्रगुप्त के प्रधानमन्त्री विष्णुगुप्त चाणक्य माने जाते हैं। आचार्य कौटिल्य का मूल नाम विष्णुगुप्त था। 'चणक-ऋषि' का पुत्र होने के कारण 'चाणक्य' तथा कुटिल गोत्रीय ब्राह्मण होने से 'कौटिल्य' इनके उपनाम हैं। वैसे 'अभिज्ञान चिन्तामणि' नामक कोश के अनुसार इनके-वात्स्यायन, मल्लनाग, कौटिल्य, चाणक्य, द्रमिल, पक्षिश-स्वामी, विष्णुगुप्त, आंगल आदि आठ नाम भी मिलते हैं। जहां कुटिल गोत्रीय ब्राह्मण होने के कारण कौटिल्य कहा गया है, वहां यह भी मिलता है कि कुटिल नीति के पक्षपाती होने के कारण इन्हें कौटिल्य नाम से जाना जाता है। अर्थशास्त्र के अन्त में स्वयं चाणक्य द्वारा लिखे गये इस वाक्य से-"स्वमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रंच भाष्यं च" सिद्ध होता है स्वयं विष्णुगुप्त ने ही सूत्र और भाष्य की रचना की है। कौटिल्य के जन्मस्थान के बारे में उल्लेख कहीं नहीं मिलता। माना जाता है कि आचार्य कौटिल्य का जन्म गान्धार जनपद के 'तक्षशिला' नामक नगर में हुआ था, उस समय तक्षशिला विश्वविद्यालय विद्याओं के क्षेत्र में प्रसिद्ध एवं मुख्य केन्द्र था। संस्कृत के प्रथम व्याकरणाचार्य 'पाणिनि' इसी विश्वविद्यालय के आचार्य थे। कौटिल्य ने इसी नगर में शिक्षा प्राप्त करके इसी विश्वविद्यालय में अध्ययन का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। उनके समय में विश्वविद्यालय की ख्याति के कारण बहुत दूर-दूर से ब्राह्मण कुमार, राजकुमार शिक्षा ग्रहण करने आते थे।

आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य संसार के प्रमुख राजनीतिज्ञों में अग्रगण्य हैं। इनका जन्म आज से लगभग २३५० वर्ष पूर्व हुआ था। चाणक्य ने मगध वंश को समूल नष्ट करके चन्द्रगुप्त को सम्राट् बनाया था। इतिहासकारों के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य का शासनकाल ई०पू० ३२४ से ई०पू० ३०० के बीच ठहरता है। तदनुसार आचार्य कौटिल्य का स्थितिकाल निर्विवाद रूप से ई०पू० चतुर्थ शताब्दी मानना चाहिए। क्योंकि कौटिल्य अर्थशास्त्र पर अंग्रेजी अनुवाद करने वाले डॉ० फ्लीट ने अपनी संक्षिप्त भूमिका में अर्थशास्त्र का संभावित रचनाकाल ३२१-२९६ ई०पू० माना है। इस मत से डॉ० जैकोबी तथा डॉ० टॉमस आदि विद्वान भी सहमत हैं।

लेकिन कुछ विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं। प्रोफेसर जॉली ने कौटिल्य का समय ईसा की चौथी शताब्दी माना है क्योंकि मैगस्थनीज के यात्रा विवरण में चाणक्य के नाम का उल्लेख नहीं है। उनका यह भी मानना है कि यह ग्रन्थ कामसूत्र, जो ई० चतुर्थ शती की रचना है, से भी मिलता-जुलता है। अन्य विद्वानों ने भी अर्थशास्त्र का समय ई० चतुर्थ शताब्दी माना है जिनमें विण्टरनिट्ज तथा डॉ० कीथ के नाम उल्लेखनीय हैं। उनका कहना है कि अर्थशास्त्र का रचयिता चाणक्य जैसा कोई राजनीतिज्ञ न होकर कोई विद्वान् पण्डित होना चाहिए।

वस्तुतः इतिहास के द्वारा चाणक्य का चन्द्रगुप्त मौर्य से घनिष्ठ सम्बन्ध सिद्ध होता है। अर्थशास्त्र में 'नरेन्द्रार्थे', 'मौर्यार्थे' इत्यादि पदावली से भी यह निश्चित होता है कि अर्थशास्त्र की रचना चन्द्रगुप्त मौर्य (ई०पू० चतुर्थ शताब्दी) के जीवनकाल में हुई। चाणक्य के अर्थशास्त्र पर अशोक का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। अर्थशास्त्र और अशोक के शासन-लेखों में कुछ एक जैसे विधान पाये जाते हैं जैसे चक्रवाक, शुक और सारिका आदि पक्षियों की हत्या का वर्जित होना। युता, राजुका, समाज, महामाता आदि पारिभाषिक पदावली का दोनों में समान रूप से प्रयोग मिलता है। बाह्य प्रमाणों के आधार पर यदि विचार करें तो पता चलेगा कि सर्वप्रथम कामन्दक ने अपने 'नीतिसार' नामक ग्रन्थ का प्रयोजन एकमात्र कौटिल्य अर्थशास्त्र का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करना बतलाया है, साथ ही ग्रन्थारम्भ में विष्णुगुप्त को नमस्कार किया है। दण्डीकृत दशकुमारचरित में राजा के दैनिक कर्त्तव्यों का विवेचन भी अर्थशास्त्र की तरह मिलता है तथा दो स्थलों पर 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' को उद्ध त किया है इससे स्पष्ट होता है कि दण्डी को अर्थशास्त्र के ६००० श्लोकों का पर्याप्त ज्ञान भी था।

चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य के पारस्परिक सम्बन्ध का पता कितने ही ग्रन्थों से मिल जाता है। सर्वप्रथम विष्णु पुराण, वायु पुराण तथा ब्राह्मण पुराण में चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य के घनिष्ठ सम्बन्ध का वर्णन आया है। जैन तथा बौद्ध ग्रन्थों में दोनों की मित्रता का वर्णन मिलता है। विशाखादत्त ने भी चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य की घनिष्ठता का चित्रण अपने नाटक 'मुद्राराक्षस' में किया है। अतः स्पष्ट है कि आचार्य कौटिल्य, जिनका अपर नामक चाणक्य भी है, ही अर्थशास्त्र के कर्ता है। इस प्रकार अर्थशास्त्र का काल ई० पू० त तीय-चतुर्थ शताब्दी ही होना चाहिए।

कौटिल्य का कृतित्व

चन्द्रगुप्त मौर्य (ई०पू० चतुर्थ शताब्दी) के प्रधान अमात्य चाणक्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य तथा भारत के राजाओं को आने वाली पीढ़ी को राजनीति सिखाने के लिए जिन ग्रन्थों की रचना की, उनकी संख्या पांच मानी जाती है :-

(१) कौटिल्य अर्थशास्त्र - जिसमें ६ हजार श्लोक हैं,

(२) चाणक्य सूत्राणि - एक हजार श्लोकों में निबद्ध है,

(३) चाणक्य नीति दर्पण - २४८ श्लोक,

(४) लघु चाणक्य - १०८ श्लोक,

(५) व द्ध चाणक्य - २०५ श्लोक।

चाणक्य का बनाया एक 'नीतिशास्त्र' भी है जिसके कई संस्करण प्रचलित हैं। जिनमें परस्पर पर्याप्त भेद हैं। भोज द्वारा सम्पादित संस्करण में आठ अध्याय और ५७६ श्लोक हैं। एक अन्य संस्करण में १६ अध्यायों में ३५० श्लोक बराबर विभक्त हैं। इस ग्रन्थ में सभी प्रकार के नीति वचन मिलते हैं।

इसकी रचना-शैली आपस्तम्ब सूत्र, बौधायन-धर्मसूत्र आदि सूत्र ग्रन्थों की शैली के अधिक निकट है। इसमें गद्य और पद्य दोनों का मिश्रण होने के कारण ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इसके अलावा सूत्र तथा भाष्य दोनों एक ही लेखक के लिखे हुए हैं। वैसे कहीं-कहीं उपनिषद् एवं ऊर्ध्वकालीन ब्राह्मणों की भाषा की प्रणाली द ष्टिगोचर होती है। ग्रन्थ में आदि से लेकर अन्त तक

एक ही क्रम अपनाया गया है और समस्त ग्रन्थ पूर्व नियोजित योजना के आधार पर लिखा गया है। इस प्रकार से समस्त ग्रन्थों में एक आश्चर्यजनक एकरूपता के दर्शन होते हैं।

अर्थशास्त्र का प्रतिपाद्य

कौटिल्य का अर्थशास्त्र विश्व के राजशास्त्रीय और अर्थशास्त्रीय ग्रन्थों में मूर्धन्य माना जाता है। यह नितान्त यथार्थपरक और व्यावहारिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कुल १५ अधिकरण, १५० अध्याय, १५० विषय हैं। एक व्यक्ति का ग्रन्थ होने के कारण इसमें अनुक्रम तथा व्यवस्था है। इस ग्रन्थ में एक स्थान पर लिखा है-"सब शास्त्रों का अनुशीलन करके और प्रयोग द्वारा कौटिल्य ने नरेन्द्र चन्द्रगुप्त मौर्य के लिए शासन की यह विधि बतायी है।

प्रथम अधिकरण में राजा की शिक्षा तथा उसके कर्तव्यों का निर्देशन है। एक राजा के लिए सांख्य, योग, लोकायत के दार्शनिक विचार, वेदांगों में वर्णित चारों वर्णों के कर्तव्य, देश की आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक दशा, चरवाहों के कर्तव्य, व्यापार, उद्योग नीति, दण्ड नीति आदि का ज्ञान रखना आवश्यक है। इसके साथ ही राजा के आन्तरिक एवं बाह्य कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए मन्त्री तथा गुप्तचरों का वर्णन किया गया है। क्योंकि राजकार्य सहायता के बिना सिद्ध नहीं हो सकता, एक पहिए से राज्य की गाड़ी नहीं चल सकती, इसलिए राजा को परिषद् व सचिवों की नियुक्ति करनी चाहिए। परिषद् में केवल ऐसे ही व्यक्तियों को नियुक्त किया जाये जो "सर्वोपधाशुद्ध" हों अर्थात् सब प्रकार के दोषों-निर्बलताओं से रहित हों। परिषद् के अमात्य राजा की शासन में सहायता तो करते ही थे, मन्त्री के अतिरिक्त पुरोहित का पद भी शासन में अत्यधिक महत्वपूर्ण था। इनके अतिरिक्त शासन सत्ता के अन्य महत्वपूर्ण पद ये थे-समाहर्ता, सन्निधाता, सेनापति, युवराज, प्रदेष्टा, नायक, व्यावहारिक, कर्मान्तिक, दण्डपाल, दुर्गपाल आदि। उस समय दूत और चर-व्यवस्था पर अत्यधिक ध्यान था। दूत की आवश्यकता, आचरण एवं व्यवहार, कर्तव्य, विशेषाधिकार तथा दूतों के विविध प्रकारों आदि का विस्त त तथा उपयुक्त विवेचन अर्थशास्त्र के पहले, चौथे और बारहवें अधिकरण में है। चर को राजा की आँख कहा गया है। कौटिल्य ने चरों के नौ प्रकार बताते हुए उनके कर्तव्यों का विवेचन किया है। **दूसरे अधिकरण** में राज्य का कार्यभार संभालने वाले विभिन्न अध्यक्षों और अधिकारियों का विस्तार से वर्णन हुआ है। **तीसरे अधिकरण** में कानूनों का विस्त त विवेचन है। कौटिल्य ने धर्मसंघीय और कण्टकशोधन न्यायालयों के गठन, अधिकार और कर्तव्य का विस्तार से विवेचन किया है। धर्मसंघीय न्यायालयों में व्यक्तियों के आपस के मुकदमे पेश होते थे, इसके विपरीत कण्टकशोधन न्यायालय में वे मुकदमे उपस्थित होते थे जिनका सम्बन्ध राज्य से होता था। **चौथे अधिकरण** में पुलिस द्वारा धोखा-धड़ी करने वालों को पकड़ने तथा समस्त छल-कपट के कार्यों का वर्णन है। **पांचवें अधिकरण** में अपकारी मंत्री से राजा के बचने तथा कर-विधान एवं कोष में धन-संग्रह की विधियों का विवेचन है। **छठे अधिकरण** में राजनीति के सात अंगों का उल्लेख है। प्रायः सभी राजनीतिशास्त्रज्ञों ने राज्य के सात अंग बतलाये हैं-स्वामी, अमात्य, जनपद या राष्ट्र, दुर्ग, कोश, दण्ड एवं मित्र। अंगों को प्रकृति भी कहा जाता है। **सातवें अधिकरण** में शान्ति, युद्ध, तटस्थता, युद्ध की तैयारी, सन्धि, संदेहात्मक व्यवहार आदि के कारणों का उल्लेख है। **आठवें अधिकरण** में शिकार, जुआ, स्त्री, शराब, आग, पानी आदि द्वारा राजा को कैसी-कैसी विपत्तियों का सामना करना पड़ता है, इन सभी बातों का वर्णन है। **नवें अधिकरण** में युद्ध का वर्णन है। **दसवें अधिकरण** में युद्ध विषयक शकुन आदि का वर्णन है। **ग्यारहवें अधिकरण** में स्त्री द्वारा शत्रु-विनाश का वर्णन है। **बारहवें अधिकरण** में शत्रु पर विजय प्राप्त करने की अनेक युक्तियां बताई गई हैं। **तेरहवें अधिकरण** में राजा को अपने शत्रु के नगर को जीतने के लिए किस प्रकार अपने को सर्वशक्तिशाली घोषित करना चाहिए, इन सभी साधनों का उल्लेख है। **चौदहवें अधिकरण** में कुछ असाधारण बातों का वर्णन है, जैसे-एक व्यक्ति एक माह तक बिना भोजन किए रह सकता है, कैसे वह आग पर चल सकता है। **पन्द्रहवें अधिकरण** में कार्य-योजना का विस्त त वर्णन है।

इस प्रकार अर्थशास्त्र, राजशास्त्रीय एवं अर्थशास्त्रीय विषयों का अत्यन्त विशद और व्यावहारिक संहिताबद्ध कोश है। इन विषयों का सैद्धान्तिक और प्रायोगिक निरूपण करने वाला यह ग्रन्थ विलक्षण भारतीय मेधा का निर्विवाद प्रतिष्ठापक है।

अर्थशास्त्र के प्रथम दो अधिकरणों में प्रतिपादित कुछ मुख्य विषय

१. विद्या चतुष्ठय, २. इन्द्रियजय अर्थात् अरिषड्वर्ग त्याग, ३. अमात्यों की नियुक्ति और परीक्षा, ४ गुप्तचर और उनके कर्तव्य, ५. मन्त्रज्ञान और उसकी रक्षा, ६. दूत और उनके कार्य, ७. राजा द्वारा आत्मरक्षा के उपाय, ८. राजा की दिनचर्या और कर्तव्य, ६. जनपद, १०. दुर्ग, ११. नगर, १२. कोष, १३. आय-व्यय का लेखा, १४. शुल्क (चुंगी), १५, अध्यक्ष व उनके कार्य।

१. विद्याचतुष्टय

आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति-ये चार विद्यायें हैं। (मनु सम्प्रदाय के अनुयायी आचार्य त्रयी, वार्ता और दण्डनीति, इन तीन विद्याओं को मानते हैं। उनका मत है कि आन्वीक्षकी का समावेश त्रयी के अन्तर्गत ही हो जाता है। आचार्य ब हस्पति के अनुयायी विद्वान् केवल दो ही विद्यायें मानते हैं : वार्ता और दण्डनीति। उनके मतानुसार त्रयी तो संसारी लोगों की आजीविका का साधन मात्र है। शुक्राचार्य के अनुयायी विद्वानों ने तो केवल दण्डनीति को ही विद्या माना है, और उसी को सम्पूर्ण विद्याओं का स्थान एवं कारण स्वीकार किया है। आचार्य कौटिल्य उक्त चारों विद्याओं को मानते हैं। धर्म और अर्थ का बोध कराना ही इन विद्याओं का विद्यात्व अर्थात् प्रयोजन है।

अन्वीक्षिकी - सांख्य, योग और लोकायत (चार्वाक दर्शन), ये आन्वीक्षकी विद्या के अन्तर्गत हैं। इसी प्रकार त्रयी में धर्म-अधर्म का, वार्ता में अर्थ-अनर्थ का और दण्डनीति में सुशासन-दुःशासन का ज्ञान प्रतिपादित है। त्रयी आदि विद्याओं की प्रधानता-अप्रधानता (बलाबल) को, भिन्न-भिन्न युक्तियों से, निर्धारित करती हुई आन्वीक्षकी विद्या लोक का उपकार करती है; सुख-दुःख से बुद्धि को स्थिर रखती है; और सोचने, विचारने, बोलने तथा कार्य करने में सक्षम बनाती है। यह आन्वीक्षकी विद्या सर्वदा ही सब विद्याओं का प्रदीप, सभी कार्यों का साधन और सब धर्मों का आश्रय मानी गई है।

त्रयी - साम, ऋक् तथा यजु, इन तीनों वेदों का समन्वित नाम ही त्रयी है। अथर्ववेद और इतिहासवेद भी वेद कहे जाते हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, ये छह वेदांग हैं। त्रयी में निरूपित यह धर्म, चारों वर्णों और चारों आश्रमों को अपने अपने धर्म (कर्तव्य) में स्थिर रखने के कारण लोक का बहुत ही उपकारक है। ब्राह्मण का धर्म अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन और दान देना तथा दान लेना है। क्षत्रिय का धर्म, है पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, शस्त्रबल से जीविकोपार्जन करना और प्राणियों की रक्षा करना। वैश्य का धर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना कृषिकार्य एवं पशुपालन और व्यापार करना है। इसी प्रकार शूद्र का अपना धर्म है कि वह ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य की सेवा करे; खेती, पशु-पालन तथा व्यापार करे; और शिल्प (कारीगरी), गायन, वादन एवं चारण, भाट आदि का कार्य करे। ग हस्थ अपनी परम्परा के अनुकूल कार्यों द्वारा जीविकोपार्जन करे; सगोत्र तथा असगोत्र समाज में विवाह करे; ऋतुगामी हो; देव, पितर, अतिथि और भ त्यजनों को देकर सबसे अन्त में भोजन करे। ब्रह्मचारी का धर्म है कि वह नियमित स्वाध्याय करे; अग्निहोत्र करे; नित्य स्नान करे; भिक्षाटन करे; जीवनपर्यन्त गुरु के समीप रहे; गुरु की अनुपस्थिति में गुरुपुत्र अथवा अपने किसी समान शाखाध्यायी के निकट रहे। वानप्रस्थी का धर्म है : ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना; भूमि पर शयन करना; जटा, म गचर्म को धारण किये रहना; अग्निहोत्र तथा प्रतिदिन स्नान करना; देव, पितर एवं अभ्यागतों की सेवा-पूजा करना और वन के कन्दमूल-फल पर निर्वाह करना। संन्यासी का धर्म है : जितेन्द्रिय होना; वह किसी भी सांसारिक कार्य को न करे; निष्किंचन बना रहे; एकाकी रहे; प्राणरक्षा मात्र के लिए स्वल्प आहार करे; समाज में न रहे; जंगलों में भी एक ही स्थान पर न रहे; मन, वचन, कर्म से अपना भीतर तथा बाहर पवित्र रखे।

प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक आश्रम का धर्म है कि वह किसी भी प्रकार की हिंसा न करे; सत्य बोले; पवित्र बना रहे; किसी से ईर्ष्या न करे; दयावान् और क्षमाशील बना रहे। अपने धर्म का पालन करने से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। उसका पालन न करने से वर्ण तथा कर्म में संकरता आ जाती है, जिससे लोक का नाश हो जाता है। इसलिए राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा को धर्म और कर्म मार्ग से भ्रष्ट न होने दे। अपनी प्रजा को धर्म और कर्म में प्रव त्त रखने वाला राजा लोक और परलोक में सुखी रहता है। पवित्र आर्यमर्यादा में अवस्थित, वर्णाश्रमधर्म में नियमित और त्रयी धर्म से रक्षित प्रजा दुखी नहीं होती, सदा सुखी रहती है।

वार्ता - कृषि, पशुपालन और व्यापार, ये वार्ताविद्या के विषय हैं। यह विद्या, धान्य, पशु, हिरण्य, ताम्र आदि खनिज पदार्थ और नौकर-चाकर आदि को देने से परम उपकारिणी है। इसी विद्या से उपार्जित कोश और सेना के बल पर राजा स्वपक्ष तथा परपक्ष को वश में कर लेता है।

दण्डनीति - दण्ड को प्रतिपादित करने वाली नीति ही दण्डनीति कहलाती है। आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता, इन सभी विद्याओं की सुख-सम द्धि दण्ड पर निर्भर है। वही अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराती है; प्राप्त वस्तुओं की रक्षा करती है; रक्षित वस्तुओं की व द्धि करती है और वही संवर्द्धित वस्तुओं को समुचित कार्यों में लगाने का निर्देश करती है। उसी पर संसार की सारी लोकयात्रा निर्भर है। इसलिए लोक को समुचित मार्ग पर ले चलने की इच्छा रखने वाला राजा सदा ही उद्यतदण्ड दण्ड देने के लिए प्रस्तुत रहे। पुरातन आचार्यों का अभिमत है कि 'दण्ड के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है, जिससे सभी प्राणियों को सहज ही वश में किया जा सके'। किन्तु आचार्य कौटिल्य इस युक्ति से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि 'कठोर दण्ड देने वाले राजा से सभी प्राणी उद्विग्न हो उठते हैं; किन्तु दण्ड में ढिलाई कर देने से भी लोक, राजा की अवहेलना करने लगता है। इसलिए राजा को समुचित दण्ड देने वाला होना चाहिए।' भली भाँति सोच-समझ कर प्रयुक्त दण्ड प्रजा को धर्म, अर्थ और काम में प्रव त्त करता है। काम-क्रोध के वशीभूत होकर अज्ञानतापूर्वक अनुचित रीति से प्रयुक्त किया हुआ दण्ड, वानप्रस्थ और परिव्राजक जैसे निःस्प ह व्यक्तियों को भी कुपित कर देता है; फिर ग हस्थ लोगों का तो कहना ही क्या ? इसके विपरीत, यदि दण्ड से व्यवस्था सर्वथा ही तोड़ दी जाए तो उसका कुप्रभाव यह होगा कि जैसे छोटी मछली को बड़ी मछली खा जाती है, वैसे ही बलवान् व्यक्ति, निर्बल व्यक्तियों का जीना मुश्किल कर देंगे। दण्ड-व्यवस्था के अभाव में सर्वत्र ही अराजकता फैल जाती है और निर्बल को बलवान् सताने लगता है; किन्तु दण्डधारी राजा से रक्षित दुर्बल भी बलवान् बना रहता है। राजा की दण्ड-व्यवस्था से पालित चारों वर्ण-आश्रम, सारा लोक, अपने-अपने धर्म कर्मों में प्रव त्त होकर निरन्तर अपनी अपनी मर्यादा पर बने रहते हैं। यही कारण है कि आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता, इन तीनों विद्याओं का अस्तित्व दण्डनीति पर आधारित है। शास्त्रविहित उचित रीति से प्रयुक्त दण्ड प्रजा के योगक्षेम का साधक होता है।

२. इन्द्रिय-जय अर्थात् अरिषड्वर्गत्याग -

विद्या और विनय का हेतु इन्द्रियजय है; अतः काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष इस अरिषड्वर्ग के त्याग से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका को उनके विषयों : शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध में प्रव त्त न होने देना ही इन्द्रियजय कहलाता है। अथवा शास्त्रों में प्रतिपादित कर्तव्यों के सम्यक् अनुष्ठान को ही इन्द्रियजय कहते हैं। सारे शास्त्रों का मूल कारण इन्द्रियजय है। शास्त्रविहित कर्तव्यों के विपरीत आचरण करने वाले इन्द्रिय-लोलुप राजा सारी प थिवी का अधिपति होता हुआ भी शीघ्र नष्ट हो जाता है। उदाहरणस्वरूप भोजवंशीय दाण्डक्य नामक राजा कामवश ब्राह्मणकन्या का अपहरण करने के अपराध में, उसके पिता के शाप से, सपरिवार एवं सराष्ट्र विनष्ट हो गया। यही गति विदेह देश के राजा कराल की भी हुई। क्रोधवश राजा जनमेजय भी ब्राह्मणों से कलह कर बैठा और

वह भी उनके शाप से नष्ट हो गया। इसी प्रकार भ गुवंशियों से कलह करने पर तालजंघ की भी दुर्गति हुई। लोभाभिभूत होकर इला का पुत्र पुरूरवा, चारों वर्णों से अत्याचारपूर्वक धन का अपहरण करने के कारण, उनके अभिशाप से मारा गया। यही हाल सौवीर देश के राजा अजबिन्दु का भी हुआ। अभिमानी रावण पर-पत्नी के अपहरण के अपराध से और दुर्योधन अपने भाइयों को राज्य का भाग न देने के अन्याय से मारे गये। मदोन्मत्त राजा डम्भोद्भव अपनी प्रजा का तिरस्कार करता रहा; अन्त में नर-नारायण के साथ युद्ध करते हुए वह भी विनाश को प्राप्त हुआ। इसी प्रकार हैहयराज अर्जुन, परशुराम द्वारा मारा गया। हर्ष के वशीभूत होकर वातापि नाम का असुर, अगस्त्य ऋषि के शापवश म त्युमुख में जा पहुँचे। कामादि छह शत्रुओं के वश में होकर, ऊपर गिनाये गये राजाओं के अतिरिक्त दूसरे भी बहुत से राजा, सबन्धु-बान्धव एवं सराज्य नष्ट हो गये। किन्तु जामदग्न्य परशुराम, अम्बरीष और नाभाग जैसे जितेन्द्रिय राजाओं ने चिरकाल तक इस प थिवी का उपभोग किया।

इसलिए, काम-क्रोधादि छहों शत्रुओं का सर्वथा परित्याग करके इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करे। विद्वान् पुरुषों की संगति में रहकर बुद्धि का विकास करे। गुप्तचरों द्वारा स्वराष्ट्र एवं परराष्ट्र के व त्तान्त को अवगत करे। उद्योग के द्वारा राज्य के योग-क्षेम का सम्पादन करे। राजकीय नियमों द्वारा अपने-अपने धर्म पर द ढ़ बने रहने के लिए प्रजा पर नियन्त्रण रखे। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से प्रजा को विनम्र और शिक्षित बनावे। प्रजाजनों को धन-सम्मान प्रदान कर अपनी लोकप्रियता को बनाये रखे। दूसरे का हित करने में उत्सुक रहे। इस प्रकार इन्द्रियों को वश में रखता हुआ वह (राजा) पराई स्त्री, पराया धन और हिंसाप्रव त्ति को सर्वथा त्याग दे। कुसमय शयन करना, च चलता, झूठ बोलना, अविनीत व त्ति बनाये रखना, इस प्रकार के आचरणों को और इस प्रकार के आचरण वाले लोगों की संगति को वह छोड़ दे। उसको चाहिए कि वह अधर्माचरण और अनर्थकारी व्यवहार का भी परित्याग कर दे। काम का भी वह सेवन करे; किन्तु उससे धर्म और अर्थ को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे। सर्वथा सुखरहित जीवन-यापन न करे। परस्पर अनुबद्ध धर्म, अर्थ और काम, इस त्रिवर्ग का सन्तुलित उपभोग करे। इस त्रिवर्ग का असंतुलित उपभोग बड़ा दुःखदायी सिद्ध होता है। आचार्य कौटिल्य का अभिमत है कि 'धर्म, अर्थ और काम, इन तीनों में अर्थ प्रधान है, धर्म और काम अर्थ पर निर्भर है। गुरुजन और अमात्यवर्ग राजा की मर्यादा को निर्धारित करें। वे ही राजा को अनर्थकारी कार्यों से रोकते रहें। यदि वह एकान्त में प्रमाद करता हुआ अभर्यादित हो जाये तो समय-सूचक यन्त्र द्वारा अथवा घंटा आदि बजाकर उसको सावधान करें।

३. अमात्यों की नियुक्ति और परीक्षा

एक पहिये की गाड़ी की भाँति राजकाज भी बिना सहायता-सहयोग से नहीं चलाया जा सकता है। इसलिए राजा को चाहिए कि वह सुयोग्य अमात्यों की नियुक्ति कर उनके परामर्शों को हृदयंगम करे। आचार्य भारद्वाज का अभिमत है कि 'राजा, अपने सहपाठियों को अमात्य पद पर नियुक्त करे; क्योंकि उनके हृदय की पवित्रता से वह सुपरिचित होता है; उनकी कार्यक्षमता को भी वह जान चुका होता है। ऐसे ही अमात्य राजा के विश्वासपात्र होते हैं'।

आचार्य विशालाक्ष का कहना है कि 'ऐसा उचित नहीं। एक साथ खेलने तथा उठने-बैठने के कारण सहपाठी अमात्य राजा का तिरस्कार कर सकते हैं। इसलिए अमात्य उनको बनाना चाहिए जो कि गुप्त कार्यों में राजा का साथ देते रहे हों। समान शील और समान व्यसन होने के कारण ऐसे लोग गुप्त बातों का भेद खुल जाने के भय से, राजा का अपमान नहीं करते हैं'।

आचार्य पराशर के मत से आचार्य विशालाक्ष की युक्तियाँ दोषपूर्ण हैं। पराशर का कहना है कि यह बात तो दोनों ही पक्षों पर एक समान चरितार्थ होती है। ऐसा करने से यह भी तो सम्भव है कि गुप्त बातों का भेद खुल जाने के भय से राजा ही अमात्य की कठपुतली बन जाय !

क्योंकि राजा जिन लोगों से जितना ही अपनी गुप्त बातें प्रकट करता है, उतना ही शक्ति से क्षीण होकर वह उनके वश में हो जाता है। इसलिए जो पुरुष राजा की प्राणघातक आपत्तियों में रक्षा करें, उनको अमात्य नियुक्त करना चाहिए। उनके अनुराग की परीक्षा राजा कर चुका होता है।

आचार्य पिशुन इसको भक्ति कहते हैं। उनका कहना है कि 'प्राणों की चिन्ता न करके राजा की सहायता करना भक्ति है, सेवाधर्म है; वह बुद्धि का प्रमाण नहीं; जो कि अमात्य का सर्वोच्च गुण है। इसलिए अमात्य पद पर उन्हीं का नियुक्त करना चाहिए जो कि विशिष्ट राजकीय कार्यों पर नियुक्त होकर अपने कार्यों को विशेष योग्यता के साथ सम्पन्न करके दिखा दें, क्योंकि इस ढंग से उनके बुद्धि-वैशिष्ट्य की परीक्षा हो जाती है'।

आचार्य कौणपदन्त उक्त मत को नहीं मानते। उनका कहना है कि 'ऐसे लोग अमात्योचित गुणों से शून्य होते हैं। अमात्यपद जिनको वंश-परम्परा से उपलब्ध रहा हो, उन्हीं को इस पद पर नियुक्त करना चाहिए। वे ही उसकी सम्पूर्ण रीति-नीति से सुपरिचित होते हैं। यही कारण है कि वे अपना अपकार होने पर भी,परम्परागत सम्बन्ध के कारण राजा को नहीं छोड़ते। यह बात पशु-पक्षियों तक में देखी जाती है कि गाय, अपरिचित गोष्ठ को छोड़कर परिचित गोष्ठ में ही जाकर ठहरती है'। आचार्य वातव्याधि, आचार्य कौणपदन्त के अभिमत के समर्थक नहीं है। उनकी मान्यता है कि 'इस प्रकार के अमात्य; राजा के सर्वस्व को अपने अधीन करके, राजा के समान स्वतन्त्र व त्ति वाले हो जाते हैं। इसलिए नीतिकुशल राजा नये व्यक्तियों को ही अमात्य नियुक्त करे। नये अमात्य, दण्डधारी राजा को यम का दूसरा अवतार समझ कर, उसकी कभी भी अवमानना नहीं करते'।

आचार्य बाहुदन्ती के मत से यह भी ठीक नहीं है। वे कहते हैं 'नीतिशास्त्रपारंगत, किन्तु क्रियात्मक अनुभव से शून्य व्यक्ति राजकार्यों को नहीं कर सकता है। इसलिए जो लोग कुलीन, बुद्धिमान् विश्वासपात्र, वीर और राजभक्त हों, उनको अमात्य पद पर नियुक्त करना चाहिए। उनमें गुणों की प्रधानता होती है'। आचार्य कौटिल्य के मतानुसार, भारद्वाज से लेकर बहुदन्तीपुत्र तक की विचार-परम्परा, अपने-अपने स्थान पर ठीक है। 'किसी भी पुरुष के सामर्थ्य की स्थिति उसके कायो ́ की सफलता पर निर्भर है, और उसकी यह कार्यक्षमता उसकी विद्या-बुद्धि के बल पर ही आँकी जा सकती है।' इसलिए राजा को चाहिए कि वह सहपाठी आदि की भी सर्वथा अवहेलना न करे। उसके लिए वह परमावश्यक है कि वह विद्या, बुद्धि, साहस, गुण, दोष, देश, काल और पात्र का विचार करके ही अमात्यों की नियुक्ति करे; किन्तु उन्हें अपना मन्त्री कदापि न बनाये।

सामान्य पदों पर अमात्यों की नियुक्ति करके, मन्त्री और पुरोहित के सहयोग से राजा, गुप्त उपायों के द्वारा उनके आचरणों की परीक्षा करे। धर्मोपधा से राजा, पुरोहित को किसी नीच जाति के यहाँ यज्ञ करने तथा पढ़ाने के लिए नियुक्त करे। जब पुरोहित इस कार्य के लिए निषेध करे तो राजा उसको उसके पद से च्युत कर दे। वह पदच्युत पुरोहित गुप्तचर स्त्री-पुरुषों के माध्यम से शपथपूर्वक प्रत्येक अमात्य को राजा से भिन्न कराये। वह कहे 'यह राजा बड़ा अधार्मिक है। हमें चाहिए कि उसके स्थान पर, उसके ही वंशज किसी श्रेष्ठ पुरुष को, किसी धार्मिक व्यक्ति को, समीप के किसी सामन्त को, अथवा किसी जंगल के स्वामी को, या जिसको भी एकमत होकर हम निश्चित कर लें, उसको, नियुक्त करें। मेरे इस प्रस्ताव को सब ने स्वीकार कर लिया है। बताओ, तुम्हारी क्या राय है ?' पुरोहित की यह बात सुनकर यदि अमात्य उसको स्वीकार न करे तो उसे पवित्र हृदय वाला समझना चाहिए। गुप्त धार्मिक उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा को 'धर्मोपधा' कहते हैं।

अर्थोपधा से राजा, किसी निन्दनीय या अपूज्य व्यक्ति का सत्कार करने के लिए, सेनापति को आदेश दे। राजा की इस बात से जब सेनापति रुष्ट हो जाए तो राजा उसको भी पदच्युत कर दे। वह पदच्युत अपमानित सेनापति गुप्तभेदियों द्वारा अमात्य को धन का प्रलोभन देकर उसे पूर्वोक्त विधि से राजा के विनाश के लिए उकसाये। वह कहे 'मेरी इस युक्ति को सभी ने स्वीकार कर लिया है।

बताओ, तुम्हारी क्या राय है ?' सेनापति की यह बात सुनकर अमात्य यदि उसका विरोध करे तो समझ लेना चाहिए कि वह पवित्र हृदय वाला है। गुप्त आर्थिक उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा को ही 'अर्थोपधा' कहते हैं।

कामोपधा से राजा किसी सन्यासिनी का वेष धारण करने वाली विशेष गुप्तचर स्त्री को अन्तःपुर में ले जाकर उसका अच्छा स्वागत-सत्कार करे और फिर वह एक-एक अमात्य के निकट जाकर कहे 'महामात्य, महारानी जी आप पर आसक्त हैं। आपके समागम के लिए उन्होंने पूरी व्यवस्था कर दी है। इससे आपको यथेष्ट धन भी प्राप्त होगा।' अमात्य यदि उसका विरोध करे तो उसे पवित्रचित्त समझना चाहिए। गुप्त कामसम्बन्धी उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा को ही 'कामोपधा' कहते हैं।

भयोपधा से नौका-विहार के लिए एक अमात्य दूसर अमात्यों को बुलाये; इस प्रस्ताव पर राजा उत्तेजित होकर उन सब को दण्डित कर दे। तदनन्तर राजा द्वारा पहले अपकृत हुआ कपट-वेषधारी छात्र उस तिरस्कृत एवं दण्डित अमात्य के निकट जाकर उससे कहे 'यह राजा बहुत ही बुरा है। इसका वध करके हम किसी दूसरे राजा को उसके स्थान पर नियुक्त करें। सभी अमात्यों को यह स्वीकृत है। कहिए, आपकी क्या राय है ?' अमात्य यदि उसका विरोध करे तो उसको शुचिचित्त समझना चाहिए। गुप्तभय सम्बन्धी उपायों द्वारा अमात्य की शुचिता की परीक्षा को ही 'भयोपधा' कहते हैं।

जो अमात्य धर्मपरीक्षा में खरे उतरें उन्हें धर्मस्थानीय (दीवानी कचहरी) तथा कण्टकशोधन (फौजदारी कचहरी) सम्बन्धी कार्यों मे नियुक्त करना चाहिए। अर्थपरीक्षा में उत्तीर्ण अमात्यों को समाहर्ता (टैक्स कलक्टर) तथा सन्निधाता (कोषाध्यक्ष) के पदों पर रखना चाहिए कामोपधा में परीक्षित अमात्यों को बाहरी विलास-स्थानों तथा भीतरी अन्तःपुर-सम्बन्धी रक्षा का भार सौंपना चाहिए। भयपरीक्षा में उत्तीर्ण अमात्यों को राजा अपना अंगरक्षक नियुक्त करे। इनके अतिरिक्त जो अमात्य सभी परीक्षाओं में खरे उतरे हों उन्हें मन्त्रिपद पर नियुक्त किया जाना चाहिए; और सभी परीक्षाओं में असफल अमात्यों को खदानों, हाथियों और जंगलों आदि की परिश्रम-साध्य व्यवस्था का भार सौंपना चाहिए।

सभी पुरातनअर्थशास्त्रविद् आचार्यों का यही अभिमत है कि 'धर्म, अर्थ, काम और भय द्वारा परीक्षित पवित्र अमात्यों को, उनकी कार्यक्षमता के अनुकूल कार्यभार सौंपना चाहिए।' किन्तु, इस सम्बन्ध में आचार्य कौटिल्य का एक संशोधन यह है कि 'अमात्यों की परीक्षा अवश्य ली जाय; पर उस परीक्षा का माध्यम राजा अपने को तथा रानी को न बनाये। क्योंकि कभी-कभी किसी निर्दोष अमात्य को छल-प्रपंचयुक्त इन गुप्त-रीतियों से ठगा जाना, पानी में विष घोल देने के समान हो जाता है। सम्भव हो सकता है कि उक्त रीतियों से बिगड़ा हुआ अमात्य फिर कभी भी सुधर न सके। क्योंकि छल-छदम् जैसे कपट उपायों के द्वारा ठगे गये चरित्रवान् पुरुष की बुद्धि तब तक चैन नही लेती, जब तक उसने अभीष्ट को प्राप्त न कर लिया हो।

इसलिए सर्वोत्तम यही है कि उक्त चारों उपायों से परीक्षण के लिए राजा, किसी बाह्य वस्तु को माध्यम बनाये और गुप्तचरों द्वारा अमात्यों के चरित्र की परीक्षा करे।

४. गुप्तचर और उनके कर्त्तव्य

आचार्य कौटिल्य के अनुसार राज्य की व्यवस्था के सुचारु संचालन के लिए राजा को अपने राज्य में योग्य गुप्तचर नियुक्ति करने चाहिए। कौटिलीय अर्थशास्त्र के अनुसार कापटिक, उदास्थित, ग हपतिक, वैदेहक, तापस, सत्री, तीक्ष्ण, रसद ओर भिक्षुकी आदि अनेक प्रकार के गुप्तचर होते हैं। दूसरों के रहस्यों को जानने वाला, बड़ा प्रगल्भ और विद्यार्थी की वेषभूषा में रहने वाला गुप्तचर 'कापटिक' कहलाता है। इस गुप्तचर को धन, मान और सत्कार से सन्तुष्ट कर मन्त्री उससे कहे 'जिस-किसी की भी तुम हानि होते देखो, राजा को और मुझे प्रमाण मान कर तत्काल ही तुम मुझे सूचित कर दो।'

बुद्धिमान्, सदाचारी, संन्यासी के वेष में रहने वाले गुप्तचर का नाम 'उदास्थित' है। वह अपने साथ बहुत-से विद्यार्थी और बहुत-सा धन लेकर, वहाँ जाकर विद्यार्थियों द्वारा कार्य करवाये, जहाँ कृषि, पशुपालन एवं व्यापार के लिए भूमि नियुक्त है। उस कार्य को करने से जो लाभ हो, उससे वह सब संन्यासियों के भोजन, वस्त्र एवं निवास का प्रबन्ध करे। जो भी इस प्रकार की आजीविका की इच्छा करे, उन्हें सब तरह से अपने वश में कर ले और उनसे कहे 'तुम्हें इसी वेष में राजा का कार्य करना है। जब तुम्हारे वेतन तथा भत्ते का समय आये, यहाँ उपस्थित हो जाना।' दूसरे संन्यासी भी अपने-अपने संप्रदाय के संन्यासियों को इसी प्रकार समझा-बुझा दें।

बुद्धिमान्, पवित्र ह्रदय और गरीब किसान के वेष में रहने वाले गुप्तचर को 'ग हपतिक' कहते हैं। वह कृषिकार्य के लिए नियुक्त भूमि में जाकर 'उदास्थित' गुप्तचर के ही समान कार्य करे।

बुद्धिमान, पवित्र ह्रदय, गरीब, व्यापारी के वेष में रहने वाला गुप्तचर 'वैदेहक' है। वह व्यापारकार्य के लिए नियुक्त भूमि में जाकर 'उदास्थित' गुप्तचर की भाँति कार्य करता हुआ रहे।

जीविका के लिए सिर मुँड़ाये या जटा धारण किये हुये, राजा का कार्य करने वाला गुप्तचर ही 'तापस' है। वह कहीं नगर के समीप ही बहुत से मुंड या जटिल विद्यार्थियों को लेकर रहे और महीने दो महीने तक लोगों के सामने हरा शाक या मुट्ठीभर अनाज खाता रहे; वैसे छिपे तौर पर अपनी इच्छानुसार सुस्वादु भोजन करता रहे। वैदेहक तथा उसके अनुचर उसकी पूजा-अर्चना करें। शिष्यमण्डली घूम-घूम कर यह प्रचार करे कि यह तपस्वी पूर्ण सिद्ध, भविष्य-वक्ता और लौकिक शक्तियों से सम्पन्न है। अपना भविष्य-फल जानने की इच्छा से आगे हुए लोगों की पारिवारिक पहिचान, उनके शारीरिक चिह्नों के माध्यम से तथा अपने शिष्यों के संकेतों के अनुसार बताये। ऐसा भी बताये कि इन-इन कार्यों में थोड़ा लाभ का योग है। इसके अतिरिक्त वह, आग लगने, चोरी हो जाने, दुष्ट लोगों के वधस्वरूप इनाम देने; देश-विदेश के फल; यह कार्य आज होगा या कल; या इस कार्य को राजा करेगा; आदि बातें भी उनको बताये।

इस प्रश्नोत्तर प्रसंग में 'तापस' गुप्तचर की दूसरे सत्री आदि गुप्तचर सहायता करें। प्रश्नकर्ताओं में यदि धीर, बुद्धिमान्, चतुर लोग हों तो उनसे वह, राजा की ओर से, धन प्राप्त होने की बात कहे; मन्त्री के साथ भी उनकी मुलाकात का संयोग बताये। जब मंत्री से इन लोगों की मुलाकात हो तो उचित यह होगा कि ऐसे लोगों को मंत्री धन तथा आजीविका आदि देकर, गुप्तचर की भविष्यवाणी को सच्ची सिद्ध कर दे। जो लोग किसी कारणवश क्रुद्ध हो गए हों उन्हें धन एवं सम्मान देकर संतुष्ट किया जाए। जो बिना कारण ही क्रुद्ध हों तथा राजा से द्वेष रखते हों, उनका चुपचाप वध करवा डाले।

इस प्रकार धन और मान से राजा द्वारा सम्मानित गुप्तचर तथा अमात्य आदि राजोपजीवी पुरुषों के सद्व्यवहारों को भली-भाँति जान लें। पाँच प्रकार के गुप्तचर पुरुषों की नियुक्ति और उनके कार्यों के विवरण का यही विधान है।

जो राजा के सम्बन्धी न हों; किन्तु जिनका पालन-पोषण करना राजा के लिए आवश्यक हो; जो सामुद्रिक विद्या, ज्योतिष, व्याकरण आदि अंगों का शुभाशुभ फल बताने वाली विद्या; वशीकरण; इन्द्रजाल; धर्मशास्त्र; शकुनशास्त्र; पक्षिशास्त्र; कामशास्त्र तथा तत्संबंधी नाचने-गाने की कला में निपुण हों वे 'सत्री' कहलाते हैं।

अपने देश में रहने वाले ऐसे व्यक्ति, जो द्रव्य के लिए अपने प्राणों की परवाह न करके हाथी, बाघ और सांप से भी भिड़ जाते हैं, उन्हें 'तीक्ष्ण' कहते हैं।

अपने भाई-बंधुओं से भी स्नेह न रखने वाले, क्रूर प्रकृति और आलसी स्वभाव के व्यक्ति 'रसद' विष देने वाले कहलाते है।

आजीविका की इच्छुक, दरिद्र, प्रौढ, विधवा, दबंग, ब्राह्मणी, रनिवास में सम्मानित, प्रधान अमात्यों के घर में प्रवेश पानेवाली 'परिव्राजिका' संन्यासिनी के वेश में खुफिया का काम करने वाली नाम

की गुप्तचरी कहलाती है। इसी प्रकार मुंडा (मुंडित बौद्ध-भिक्षुणी) और व षली (शूद्रा) आदि नारी गुप्तचरियों को भी जान लेना चाहिए। ये सभी 'संचार' नामक गुप्तचर हैं।

राजा को चाहिए कि वह, इन सत्री आदि गुप्तचरों को मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, ड्योढिदार, अन्तःपुररक्षक, छावनी-रक्षक, कलक्टर, कोषाध्यक्ष, कमिश्नर, हवलदार नगरमुखिया, खदान-निरीक्षक, मन्त्रि-परिषद् का अध्यक्ष, सेना-रक्षक, दुर्गरक्षक, सीमारक्षक और अटवीपाल आदि अधिकारियों के समीप, वेष, बोली, कौशल, भाषा तथा कुलीनता के आधार पर उनकी भक्ति और उनके सामर्थ्य की परीक्षा करके नियुक्त करे। उनमें से तीक्ष्ण नामक गुप्तचर का कर्तव्य है कि वह छत्र, चामर, व्यजन, पादुका, आसन, शिविका और घोड़े आदि बाहरी उपकरणों की देखरेख करता हुआ अमात्य आदि की सेवा करे और उनके व्यवहारों को जाने। तीक्ष्ण गुप्तचर द्वारा जानी हुई बातों को सत्र नामक गुप्तचर स्थानिक कापटिक आदि गुप्तचरों को बता दे। सूद (रसोइया), आरालिक (मांस पकाने वाला), स्नापक (नहलाने वाला), संवाहक (हाथ-पैर दबाने वाला), आस्तरक (विस्तर बिछाने वाला), कल्पक (नाई), प्रसाधक (श्रृंगार करने वाला) और उदक-परिचारक (जल भरने वाला) आदि विभिन्न वेष में रह कर रसद नामक गुप्तचर, मन्त्री आदि उच्च अधिकारियों के भेदों का पता लगाये। इसी प्रकार कुबड़े, बौने, किरात (जंगली आदमी), गूंगे, बहरे, मूर्ख, अन्धे आदि के वेष में गुप्तचर और नट, नाचने-गाने-बजाने वाले, कहानी कहने वाले, कूद-फाँद कर खेल दिखाने वाले, आदि के वेष में स्त्री गुप्तचर सब रहस्यों का पता ले। भिक्षुकी वेष धारण करने वाली गुप्तचर महिला को चाहिये कि वह रसद आदि पुरुष गुप्तचरों से प्राप्त समाचारों को कापटिक आदि गुप्तचरों तक पहुँचा दे। संस्थाओं के विद्यार्थी अपनी विशिष्ट संकेत लिपि द्वारा उस सूचना को राजा तक पहुँचावें। ऐसा करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि संस्था-गुप्तचरों को संचार-गुप्तचर और संचार-गुप्तचरों को संस्था-गुप्तचर बिल्कुल न जानने पावें। यदि अमात्य आदि के घरों में भिक्षुकी का अंतःप्रवेश निषिद्ध हो तो यह समाचार द्वारपालों के माध्यम से बाहर भिक्षुकी तक पहुँचे। यदि इसमें भी कुछ आशंका या असंभव जान पड़े तो अंतःपुर के नौकरों के माता-पिता बनने का बहाना करके व द्धा स्त्री-पुरुष भीतर प्रवेश करके रहस्य का पता लगायें। या तो रानियों के बाल सवाँरने वाली या नाचने-गाने वाली स्त्रियों अथवा दासियों द्वारा, अथवा निजी संकेतों वाले गीतों, श्लोकों, प्रार्थनाओं, या तो बाजों, बर्तनों, टोकरियों में गुप्त लेख रखकर अथवा अन्य विधियों से, जैसा भी समय के अनुसार अपेक्ष्य हो, अंतःपुर के समाचारों को बाहर लाया जाय। यदि इन युक्तियों से भी सफलता ने मिले तो गुप्तचर को चाहिए कि वह किसी भयंकर बीमारी अथवा पागलपन के बहाने आग लगाकर या किसी को जहर देकर चुपचाप बाहर निकल आवे। परस्पर अपरिचित तीन गुप्तचरों द्वारा लाये गये समाचार यदि एक ही तरह से मिलें तो उन्हें ठीक समझना चाहिए। यदि वे परस्पर विरोधी समाचारों को लायें तो उन्हें या तो नौकरी से अलग कर दिया जाये अथवा चुपचाप पिटवाया जाये।

उक्त गुप्तचरों के अतिरिक्त 'कंटकशोधन' प्रकरण में आगे बताये गए गुप्तचरों को भी नियुक्त करना चाहिये। ऐसे गुप्तचर विदेशों में जाकर वहां की सरकार के वेतनभोगी नौकर बनें और उनके गुप्त रहस्यों को समझें। ये गुप्तचर मित्र-पक्ष और शत्रु-पक्ष दोनों ओर से वेतन लें। उभयवेतनभोगी इस प्रकार के गुप्तचरों से सम्बन्ध में विजय की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिए कि वह उनके स्त्री-बच्चों को सत्कारपूर्वक अपने आधीन रखे। शत्रु की ओर से नियुक्त इस प्रकार के उभयवेतनभोगी गुप्तचरों की भी राजा जानकारी रखे और उनके माध्यम से अपने उभयवेतनभोगी गुप्तचरों की पवित्रता की भी परीक्षा करता रहे।

इस प्रकार विजिगीषु राजा को चाहिये कि वह शत्रु, मित्र, मध्यम तथा उदासीन राजाओं और उनके मन्त्री, पुरोहित, सेनापति आदि अठारह प्रकार के अधीनस्थ कर्मचारियों के निकट; सभी स्थानों पर, अपने गुप्तचरों को नियुक्त करे। इसके अतिरिक्त उन शत्रु, मित्र, मध्यम आदि राजाओं के घरों तथा उनके मन्त्री, पुरोहित आदि के घरों में भी काम करने वाले कुबड़े, बौने, नपुंसक, कारीगर स्त्रियां,

गूंगे तथा दूसरे दूसरे प्रकार के बहानों को लेकर म्लेच्छ जाति के पुरुषों को नियुक्त करना चाहिए। दुर्गों में व्यापार करने वाले लोगों को, किले की सीमा पर सिद्ध तपस्वियों को, राज्य के अन्तर्गत अन्य स्थानों पर कृषक तथा उदास्थित पुरुषों को और राज्य की सीमा पर चरवाहों, को गुप्तचर वेष में नियुक्त करना चाहिये।

जंगल में शत्रु की प्रत्येक गतिविधि का पता लगाने के लिए चतुर, वानप्रस्थी ओर जंगली लोगों को गुप्तचर नियुक्त करना चाहिए। इस प्रकार, प्रकट रूप से सामान्य स्थिति में रहते हुए, शत्रु की ओर से नियुक्त सभी, तीक्ष्ण, कापटिक, उदास्थित आदि गुप्तचरों को अपने वर्ग के अनुसार ही पहचाने। शत्रु के किसी प्रलोभन या बहकावे में न फँसने वाले अपने विश्वस्त पुरुषों को, शत्रु के गुप्तचरों का पता लगाने के लिए, राज्य की सीमा पर नियुक्त किया जाना चाहिए और उन्हें शत्रुपक्ष के लोगों को स्ववश करने के उपाय भी बता देने चाहिए। राजा को चाहिए के महामंत्री, मंत्री, पुरोहित आदि के समीप गुप्तचर नियुक्त करने के पश्चात् वह अपने प्रति प्रजाजनों तथा नगरनिवासियों का अनुराग-द्वेष जानने के लिए वहाँ भी गुप्तचरों की नियुक्ति करे। पहिले तो गुप्तचर आपस में ही लड़ने-झगड़ने लगें; और बाद में वे तीर्थस्थानों, सभा-सोसाइटियों, खाने-पीने की दूकानों, राजकर्मचारियों के बीच, तथा नाना प्रकार के लोगों में ये कहकर वाद-विवाद करें कि 'यह राजा तो सर्वगुणसम्पन्न सुना जाता है; किन्तु इसमें कोई भी सद्‌गुण नहीं दिखाई दे रहा है। उल्टा वह नगरवासियों को दण्ड देकर एवं कर वसूली करके पीड़ा पहुँचा रहा है। उसके बाद सुनने वालों की उचित-अनुचित प्रतिक्रिया को ताड़ता हुआ दूसरा गुप्तचर उसके विरोध में यों कहे-'देखो, जैसे छोटी मछली बड़ी मछली को खा जाती है, पुराकाल में वैसे ही बलवान् लोगों ने निर्बल लोगों का रहना दूभर कर दिया था। इस अन्याय से बचने के लिए प्रजा ने मिलकर विवस्वान् के पुत्र मनु को अपना राजा नियुक्त किया; और तभी से खेती की उपज का छठा भाग, व्यापार की आमदनी का दसवां भाग तथा थोड़ा-सा सुवर्ण राजा के लिए, कर रूप में निर्धारित भी कर दिया था। प्रजा के द्वारा निर्धारित भाग को पाकर राजाओं ने प्रजा के योगक्षेम का सारा दायित्व अपने ऊपर लिया। इस प्रकार ये निर्धारित दण्ड एवं कर प्रजा के उत्पीडनों को दूर करने में सहायक होते हैं और प्रजा की भलाई एवं कल्याण के कारण सिद्ध होते हैं। यही कारण है कि जंगलों में एकान्त जीवन बिताने वाले ऋषि-मुनि भी दाना-दाना करके बीने हुए अन्न का छठा भाग राजा को देते हैं; यह जानकर कि राजा का इस पर सनातन हक है, जिसके बदले में वह हमारी रक्षा करता है। इन्द्र और यम के समान ये राजा लोग भी प्रजाजनों का प्रत्यक्ष निग्रह एवं उन पर अनुग्रह करने वाले होते हैं। इसलिए जो उनका तिरस्कार करता है, निश्चित ही, उस पर दैवी विपत्तियाँ टूटती हैं।

यही कारण है, जिनको द ष्टि में रख कर राजा का अपमान नहीं करना चाहिए।' इत्यादि बातों को कह कर राजा की निन्दा करने वालों को रोक दें। गुप्तचरों के लिए आवश्यक है कि वे अफवाहों पर भी ध्यान दें। जो लोग धान्य पशु, हिरण्य आदि से राजा की सेवा करते हैं; विपत्ति और अभ्युन्नति के समय उसकी सहायता करते हैं; राजा के प्रति क्रुद्ध भाई तथा कुपित प्रजा को जो शान्त कर देते हैं; उनकी प्रसन्नता और उनक`कोप पर भी मुण्ड एवं जटिल गुप्तचर निगाह रखें।

आचार्य कौटिल्य के अनुसार राजा के लिए यह आवश्यक है कि वह गुप्तचरों के माध्यम से अपने प्रजाजनों पर ध्यान रखने के साथ ही शत्रु देश की प्रजा के क्रुद्ध, लुब्ध, भीत तथा मानी आदि वर्गों को गुप्तचरों के माध्यम से अपने राजा के विरुद्ध करवाये। इस विषय में इन वर्गों की पहचान तथा उनको वश में करने के उपायों के बारे में वे लिखते हैं - जिसको धन देने की प्रतिज्ञा करके धन न दिया गया हो; किसी शिल्प या उपकार सम्बन्धी कार्यों को समान रूप से करने वाले दो व्यक्तियों में से एक का तो सम्मान किया गया हो और दूसरे की अवमानना की गई हो; राजा के विश्वस्त कर्मचारियों ने जिसको राजभवन में प्रवेश करने से रोक दिया हो; स्वयं बुलाकर जिसका तिरस्कार किया गया हो; राजाज्ञा से प्रवासित होने के कारण दु:खित, व्यय करके भी जिसका अभीष्ट कार्य पूरा न हुआ ओ, जिसको अपने धर्म तथा अधिकार से रोका गया हो; सम्मानित तथा अधिकारपूर्ण

पद से जिसको च्युत किया गया हो; राजपुरुषों द्वारा जिसको बदनाम किया गया हो; जिसकी स्त्री को जबरदस्ती छीन लिया गया हो; जिसको जेल में ठूंस दिया गया हो; दूसरे के कहने मात्र से जिसको दण्ड दिया गया हो; झूठा इलजाम लगाकर जिस पर धार्मिक प्रतिबन्ध लगा दिया हो; जिसका सर्वस्व अपहरण किया गया हो; अशक्त कार्यों पर नियुक्त करके जिसको पीड़ित किया गया हो और जिसके बन्धु-बान्धवों को देश-निकाला दिया गया हो-इस प्रकार के सभी लोग 'क्रुद्धवर्ग' कहलाते हैं।

किसी लोभ के कारण हिंसा करके जो दूषित हो चुका हो; पाप कर्मो को करने में जो कुख्यात हो; अपने समान अपराधी को दण्डित हुआ देखकर जो घबड़ा गया हो; भूमि का अपहरण करने वाला; जो दण्ड के द्वारा वश में किया गया हो; सभी राजकीय विभागों पर जिसका अधिकार हो; अपनी कार्यक्षमता से जिसने प्रभूत धन एकत्र कर लिया हो; जो राजा के किसी वंशज हिस्सेदार के निकट कुछ कामना से रहता हो; जिससे राजा शत्रुता रखता हो और जो राजा से शत्रुता रखता हो-इस प्रकार से सभी लोग 'भीतवर्ग' कहलाते हैं।

जिसका सब धन-वैभव नष्ट हो गया हो; जो कायर, व्यसनी और अपव्ययी हो, वह 'लुब्धवर्ग' कहलाता है।

अपने को महान् समझने वाला; आत्मश्लाघी; शत्रु के सम्मान को सहन न करने वाला; नीच लोगों द्वारा प्रशंसित; तीक्ष्णप्रकृति; साहसी और भोग्य-पदार्थों से कभी सन्तुष्ट न होने वाला वर्ग ही 'मानीवर्ग' कहलाता है।

उक्त क्रुद्ध, लुब्ध, भीत आदि कृत्यपक्ष के लोगों में से जिस मुण्ड या जटिल गुप्तचर के जो-जो भक्त हों उसको वही गुप्तचर अपने वश में करे। गुप्तचर, क्रुद्धवर्ग के लोगों को उनके स्वामी से यह कह कर फोड़े, 'देखो, जैसे उन्मत्त पीलवान से चलाया गया मतवाला हाथी अपने सामने जो कुछ भी देखता है, उसे कुचल डालता है, उसी प्रकार शास्त्ररूपी आँखों से हीन, अपने अंधे मंत्री के साथ रहता हुआ यह राजा राष्ट्र और प्रजा को नष्ट करने के लिए उद्यत है। ऐसी अवस्था में इस राजा के प्रति तुम्हें कुपित होना चाहिए।' यह कहकर क्रुद्धवर्ग को राजा से फोड़ दे।

भीतवर्ग को अपने वश में करने के लिए गुप्तचर ऐसा कहे-'देखो, जैसे डरा हुआ साँप जिससे भय खाता है उसी पर अपना विष उगल देता है, उसी प्रकार यह राजा भी तुमसे शंकित है और सर्वप्रथम तुम्हारे ऊपर क्रोधरूपी विष उगलने वाला है। तुम्हारे लिए यही उचित है कि तुम इस स्थान को छोड़ कर कहीं अन्यत्र चले जाओ।' यह कह कर भीतवर्ग का भेदन करे।

लुब्धवर्ग को वश में करने के लिए गुप्तचर यों कहे, 'देखो जैसे चाण्डालों की गाय चाण्डालों के लिए ही दूध देती है, ब्राह्मणों के लिए नहीं, उसी प्रकार राजा भी बल, बुद्धि और वाक्शक्ति से हीन लोगों के लिए लाभदायक है, सर्वगुण-सम्पन्न लोगों के लिए नहीं। इसके विपरीत अमुक राजा बड़ा गुणज्ञ है, तुम्हें उसी के आश्रय में रहना चाहिए।' इस प्रकार लुब्धवर्ग को मिलाये।

मानीवर्ग का भेदन करने के लिए गुप्तचर कहे 'देखो, जैसे चाण्डालों का कुँआ अकेले उन्हीं के लिए उपयोगी है, उसी प्रकार नीच राजा भी नीच लोगों के लिए ही सुखकर है, तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ पुरुषों के लिए नहीं। किन्तु वह अमुक नाम का राजा स्वयं गुणी और गुणज्ञों का आदर करने वाला है। तुम्हें उसी के आश्रम में जाकर रहना चाहिए।' इस प्रकार मानीवर्ग को उसके स्वामी से अलग करे। इस प्रकार राजा अपने पक्ष में किये गये पुरुषों को शपथ, संधि आदि से विश्वास दिला कर उन्हें उन्हीं कार्यों में नियुक्त करे, जिन पर वे नियुक्त थे; किन्तु उनके पीछे गुप्तचरों को अवश्य रखे। इस प्रकार राजा, शत्रुदेश में कृत्यपक्ष के पुरुषों को साम तथा दाम के द्वारा अपनी ओर मिलावे। परन्तु अकृत्यपक्ष के पुरुष उन्हें भेद तथा दण्ड के द्वारा अपनी ओर करतेरहें और उनके सामने शत्रु के दोषों की निरन्तर चर्चा करते रहें।

५. मंत्र ज्ञान और उसकी रक्षा

आचार्य कौटिल्य के अनुसार विजय की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिए कि वह अपने देश में दुर्ग आदि तथा शत्रुदेश के सम्बन्ध में संधि-विग्रह आदि कार्यों पर विचार करे। इस प्रकार के सभी कार्यो ं को गंभीर विचार-विनिमय के अनन्तर ही आरम्भ करना चाहिए। गंभीर व गोपनीय विचार विमर्श ही मंत्र ज्ञान कहलाता है। मंत्र के पांच भाग होते हैं - (१) कार्यारम्भ करने का उपाय, (२) कार्यसाधक पुरुष तथा द्रव्य, (३) देशकाल विभाग, (४) विघ्न प्रतिकार और (५) कार्यसिद्धि।

किसी कार्य की सिद्धि के लिए मंत्र अर्थात् विचार-विमर्श जितना आवश्यक है उससे अधिक आवश्यक है उस मंत्र की रक्षा। अतः राजा मंत्र ज्ञान और उसकी रक्षा के विषय में सदैव सावधान रहे। जिस स्थान पर बैठकर मन्त्रणा की जाय वह चारों ओर से इस प्रकार बन्द होना चाहिए जिससे वहां पक्षी तक न झांक सके और कोई शब्द बाहर न सुनाई दे, क्योंकि अनुश्रुति है कि पुराकाल में किसी राजा की गुप्त मंत्रणा को तोता और मैना ने सुनकर बाहर प्रकट कर दिया था। इसी प्रकार कुत्ते तथा अन्य पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में भी सुना जाता है। इसलिए राजा की आज्ञा के बिना कोई भी व्यक्ति किसी भी स्थिति में मंत्रणास्थल पर न जावे। यदि गुप्त मन्त्रणा के भेद को कोई फोड़ दे तो तत्काल ही उसको मरवा देना चाहिए।

कभी-कभी बिना कहे ही दूत, अमात्य तथा राजा के हाव-भाव एवं मुद्रा द्वारा भी गुप्त भेद प्रकट हो जाते हैं। स्वाभाविक क्रियाओं के विपरीत भिन्न चेष्टाएं 'इंगित' कहलाती हैं। चेष्टाओं के प्रकट करने वाले अंग 'आकार' या 'आकृति' कहलाते हैं। इसलिए विजिगीषु राजा को चाहिए कि जब तक विचारित कार्यों के आरम्भ करने का समय नहीं आता तब तक अपने गुप्त भावों को दबाकर रखे। मंत्रियों की असावधानी के कारण या मद्यपान की बेहोशी में अथवा सोते समय आकस्मिक प्रलाप द्वारा या विषय-भोग की लालसा से अथवा अभिमान के भाव से गुप्त मंत्रणाएं समय से पहिले प्रकट हो जाती हैं।

आड़ में छिपकर सुननेवाले अथवा मन्त्रणाकाल में मूर्ख कहकर अपमानित हुआ व्यक्ति भी मन्त्र के भेद को फोड़ देता है। इसलिए इन सभी बातों को द ष्टि में रखकर राजा को चाहिए कि वह अपने गुप्त रहस्यों की सावधानी से रक्षा करे। आचार्य भारद्वाज का सुझाव है कि 'मन्त्र के प्रकट हो जाने पर राजा और उसके सलाहकारों की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। इसलिए इस प्रकार की गुप्त मन्त्रणाओं पर राजा अकेला ही विचार करे; क्योंकि मन्त्रियों के भी अपने सलाहकार होते हैं। उनके भी दूसरे लोग परामर्शदाता होते हैं इसलिए इस मन्त्रि-परम्परा के कारण गुप्त बातों के प्रकट हो जाने का भय बना रहता है। 'इसलिए गुप्त मन्त्रणाओं को राजा के अतिरिक्त कोई न जानने पावे। केवल कार्यारम्भ करने वाले व्यक्ति ही उसके आभास को जान सकें और उन्हें भी उसका परिणाम कार्य की समाप्ति के बाद ही ज्ञात हो।'

आचार्य विशालाक्ष कुछ संशोधन के साथ अपना विचार प्रकट करते हैं। उनका कहना है कि 'एक ही व्यक्ति द्वारा सोचा-विचारा हुआ मन्त्र सिद्धिदायक नहीं हो सकता। सभी राजकार्य प्रत्यक्ष और परोक्ष दो प्रकार के होते हैं; उनके लिए मन्त्रियां की अपेक्षा होती है। न जाने हुए कार्य को जानना, जाने हुए कार्य का निश्चय करना, निश्चितकार्य को द ढ़ करना, किसी कार्य में सन्देह उत्पन्न हो जाने पर विचार-विमर्श द्वारा उस संशय का निराकरण करना, आंशिक कार्य को पूरी तरह विचारना इत्यादि सभी बातं मन्त्रियों कें सहयोग से ही पूरी कह जा सकती हैं। इसलिए विजिगीषु राजा को अत्यन्त बुद्धिमान् और पर्याप्त अनुभवी व्यक्तियों के साथ बैठकर विचार करना चाहिए। 'राजा को चाहिए कि सलाह करते समय वह किसी को अवमानित न करे; सबकी बातों को ध्यापनूर्वक सुने; यहाँ तक कि बालक की भी सारगर्भित बात को ग्रहण करे।'

आचार्य पराशर के मतावलम्बी विद्वानों का कहना है कि 'आचार्य विशालाक्ष के उक्त कथन से मन्त्र का ज्ञान भले ही हो सकता है, मन्त्र की रक्षा नहीं। इसलिए राजा को जिस कार्य के लिए सलाह

लेनी हो उस कार्य के समान ही दूसरे कार्य के सम्बन्ध मे वह मन्त्रियों से पूछे। राजा किसी ऐतिहासिक घटना का हवाला देकर कहे कि अमुक कार्य इस ढंग से किया गया था; इसी कार्य को यदि इस ढंग से करना होता तो कैसे किया जाना चाहिए था। इस पर मन्त्री जो राय दें उसके अनुसार ही तत्समान अपने अभीष्ट कार्य को सम्पन्न करे। ऐसा करने से मन्त्र का ज्ञान भी हो जाता है और मन्त्र की रक्षा भी।'

आचार्य पिशुन अर्थात् नारद इस मन्तव्य को नहीं मानते। उनकी स्थापना है 'क्योंकि इस तरह प्रकारान्तर से म्रन्त्रियों के सम्मुख किसी बात को रख देने से वे समझने लगते हैं कि राजा हमारी सलाह नहीं मानता और उसका हम पर विश्वास नहीं है। इसलिए वे पूर्वघटित एवं अघिटित विषय पर लापरवाही से उत्तर देते हैं और उस बात को प्रकाशित भी कर देते हैं। यह तो मन्त्र के लिए बड़ा दोष है। इसलिए राजा को यही उचित है कि जो लोग जिन-जिन कार्यों पर नियुक्त एवं जिन-जिन विचारों के लिए उपयुक्त हैं उन्हीं के साथ वैसी सलाह करे। ऐसा करने से मन्त्रणा में अधिक परिमार्जन हो जाता है ओर उसकी सुरक्षा भी हो जाती है।

आचार्य कौटिल्य उक्त मत से अपनी असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि 'नारदमुनि की बताई हुई युक्तियों के अनुसार मन्त्र व्यवस्थित नहीं हो सकता। इसलिए तीन या चार मन्त्रियों को साथ बैठाकर राजा को मन्त्रणा करनी चाहिए। क्योंकि एक ही मन्त्री से सलाह करता हुआ राजा किसी कठिनतम कार्य के अड़ जाने पर उचित समाधान नहीं कर पाता और मन्त्री प्रतिद्वन्द्वी के रूप में मनमाना करने लगता है। दो मंत्रियों के साथ बैठकर भी वह सलाह करता है तो कोई असंभव नहीं कि वे दोनों मिलकर राजा को अपने वश में कर लें अथवा दोनों लड़ने लग जायें तो सारी मंत्रणा ही धूल में मिल जायेगी। यदि तीन या चार मंत्री सलाहकार होंगे तो उस अवस्था से इस प्रकार के अनर्थकारी महान् दोष के उत्पन्न हो जाने की संभावना नहीं है। कोई भी दोष उसमें सहसा ही नहीं आ सकता है। यदि चार से अधिक मन्त्री हो जायं तो कार्य का निश्चय करना कठिन हो जाता है और उस दशा में मन्त्र की सुरक्षा में भी सन्देह हो जाता है।' इसलिए देश, काल और कार्य के अनुसार एक या दो मन्त्रियों के साथ भी राजा मन्त्रणा करे। अपनी विचार-शक्ति के अनुसार वह अकेला बैठकर कुछ कार्यो का स्वयं ही निर्णय करे।

मंत्र के विषय में राजा एक-एक मंत्री से अथवा एक साथ सभी मंत्रियों से परामर्श कर सकता है। मंत्रियों के भिन्न-भिन्न अभिप्रायों को वह युक्तियों के द्वारा समझे। भली-भाँति समझ-बूझ जाने पर अविलंब ही वह अपने निश्चय को कार्यरूप में परिणत कर दे। किसी कार्य को अधिक समय तक विचारते रहना उचित नहीं है। जिन लोगों का कभी अपकार किया हो, उनके साथ या उनके सहयोगियों के साथ कभी भी मंत्रणा नहीं करनी चाहिए।

मनु के अनुयायी अर्थशास्त्रविदों का इस सम्बन्ध में कहना है कि 'मंत्रि-परिषद् में बारह अमात्यों की नियुक्ति की जानी चाहिए। ब हस्पति के अनुयायी विद्वान् 'सोलह मन्त्रियों' के पक्ष में हैं। शुक्राचार्य-पक्ष के आचार्य मन्त्रियों की संख्या 'बीस' रखना अधिक उपयुक्त समझते हैं। आचार्य कौटिल्य का कहना है कि 'कार्य करने वाले पुरुषों के सामर्थ्य के अनुसार ही उनकी संख्या नियत होनी चाहिए।' वे निर्धारित मन्त्री विजिगीषु राजा के और उसके शत्रु राजा के सम्बन्ध में विचार करें। जो कार्य प्रारम्भ न किये गये हों उन्हें प्रारम्भ करायें; प्रारम्भ किये कार्यों को पूरा करावें और जो कार्य पूरे हो चुके हों उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन-संमार्जन करें।

निष्कर्ष यह है कि विभागीय अध्यक्ष अपने-अपने कार्यों को अंत तक अधिकाधिक निपुणता से सम्पन्न करें। जो मन्त्री राजा के सन्निकट हों, उनको साथ लेकर राजा उनके कार्यों का स्वयं ही निरीक्षण करे। किन्तु जो दूर हों, उनसे पत्र द्वारा परामर्श करता रहे। इन्द्र की मन्त्रि-परिषद् में एक हजार ऋषि थे, जो कि उसके कार्यों के निर्देशक थे। इसीलिए तो दो नेत्रों वाले इन्द्र को हजार आँखों वाला (सहस्त्राक्ष) कहा गया है।

अत्यावश्यक कार्य के आ जाने पर राजा, मन्त्रि-परिषद् का आयोजन कर उससे परामर्श करे। उनमें से बहुसमर्थित तथा शीघ्र ही कार्यसिद्धि कर देने वाली राय के अनुसार कार्य सम्पादन करे।

इस ढंग से कार्य करते हुए राजा के गुप्त रहस्यों को कोई बाहरी व्यक्ति नहीं जा पाता है, प्रत्युत वह दूसरों के दोषों को भी जान लेता है। राजा को चाहिए कि वह अपने गुप्त भावों को उसी प्रकार अपने मन में छिपाये रखे जिस प्रकार कि कछुआ अपने अंगों को छिपाये रखता है। जिस प्रकार वेदाध्ययन से शून्य ब्राह्मण किसी श्रेष्ठ पुरुष के यहाँ श्राद्ध नहीं कर सकता है, उसी प्रकार शास्त्रज्ञान से शून्य व्यक्ति मन्त्र को सुरक्षित नहीं रख पाता है।

६. दूत और उनके कार्य

कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार दूत तीन प्रकार के होते हैं १- निस ष्टार्थ, २-परिमितार्थ और ३-शासनहर।

(१) निस ष्टार्थ - कुलीन, बुद्धिमान, वीर, तथा राजभक्ति आदि गुणों से सम्पन्न दूत जिसको कि अमात्य अथवा मन्त्री के समान ही अधिकार प्राप्त होते हैं तथा जिसको अपने राजा के प्रतिनिधि के रूप में शत्रुराजा से सन्धि विग्रह तथा अन्य विषयों के सम्बन्ध में वार्ता करने का अधिकार प्राप्त होता है वह निस ष्टार्थ दूत कहलाता है।

(२) परिमितार्थ -निस ष्टार्थ दूत से गुणों और अधिकारों में एक चौथाई न्यून गुण और अधिकार रखने वाला दूत परिमितार्थ कहलाता है। यह राजा द्वारा किसी कार्य विशेष के लिये नियुक्त किया जाता है। निर्धारित कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्यों में विचार या निर्णय का अधिकार उसे नहीं होता।

(३) शासनहर- शासनहर सामान्य कोटि का दूत होता है जिसका कार्य शासकीय पत्र अथवा सन्देशों को दूसरे राजा के पास ले जाना होता है।

आचार्य कौटिल्य दूतों के कर्त्तव्यों का विस्तार से वर्णन करते हुए लिखते हैं कि पालकी आदि सवारी, घोड़े आदि वाहन, नौकर-चाकर और सोने-बिछाने आदि सामग्री की भली-भाँति व्यवस्था करके दूत को शत्रुदेश की ओर प्रस्थान करना चाहिये। दूत को पहले ही से यह सोच-विचार कर लेना चाहिये कि 'मैं अपने स्वामी का संदेश इस ढंग से कहूँगा; उसका यह उत्तर होगा तो मेरे प्रत्युत्तर की विधि इस प्रकार होगी; या किन-२ विधियों से उस शत्रु राजा को वश में करना होगा।' आदि-आदि।

राजदूत को चाहिए कि वह शत्रुदेश के वनरक्षक, सीमारक्षक, नगरवासियों तथा जनपदवासियों से मित्रता गांठे। साथ ही वह उभयपक्ष की सेनाओं के ठहरने योग्य युद्ध-भूमि और संयोग बने पर अपनी सेना के भाग सकने योग्य उपयुक्त स्थानों तथा रास्तों का भी निरीक्षण करे। साथ ही शत्रुपक्षी राजा के दुर्ग, उसके राज्य की सीमाएं, आमदनी, उपज, आजीविका के साधन, राष्ट्ररक्षा के तरीके, वहाँ के गुप्त भेद एवं वहाँ की बुराइयों का पता लगाना भी दूत का ही कर्तव्य है। किसी शत्रु राजा के राज्य में प्रवेश करने से पूर्व दूत, उस राजा की आज्ञा प्राप्त कर ले। प्राणान्तक परिस्थिति के उपस्थित हो जाने पर भी वह अपने स्वामी का संदेश अविकल रूप में कहे। यदि शत्रु राजा की वाणी में, मुखमुद्रा में, द ष्टि में प्रसन्नता झलकती हो; वह दूत की बातों को आदरपूर्वक सुन रहा हो; दूत को स्वेच्छया प्रश्न करने या अभीष्ट को प्रकट करने की स्वतन्त्रता हो; दूत के स्वामी राजा का कुशल-क्षेम तथा उसके गुणों के प्रति शत्रु राजा की उत्सुकता हो; दूत को वह आदरपूर्वक समीप ही बैठाये; राजकीय उत्सवों पर दूत को भी स्मरण करे और दूत के प्रत्येक कार्य पर शत्रु राजा का विश्वास हो; तो दूत को समझना चाहिए कि वह मुझ पर प्रसन्न है। यदि इसके विपरीत आचरण देखे, तो समझ ले कि शत्रु राजा उस पर रुष्ट है। इस प्रकार के रुष्ट हुए राजा से दूत कहे 'स्वामिन्, आप हों, अथवा दूसरे कोई भी राजा हों, दूत सभी का मुख होता है। उसी के माध्यम से राजा लोग पारस्परिक वार्ता-विनिमय करते हैं। इसलिए प्राणघातक स्थिति के आ जाने पर भी दूत सही संदेश ही निवेदित करते हैं। कोई चाण्डाल भी इस कार्य पर नियुक्त किया गया हो तो

राजधर्म के अनुसार वह भी अवध्य है, उसी स्थान पर यदि ब्राह्मण हो तो उसके वध से सम्बन्ध में तो सोचा भी नहीं जा सकता है। दूसरे की कही हुई बात को ही दुहरा देना मात्र दूत का कार्य होता है।'

जब तक शत्रुराजा उसे अपने राज्य से जाने की आज्ञा न दे तब तक वह वहीं रहे। शत्रुराजा द्वारा प्राप्त सम्मान पर वह गर्व न करे। शत्रुओं के बीच रहता हुआ अपने को वह बलवान् न समझे। किसी के कुवाक्य को भी वह पी ले। स्त्री-प्रसंग और मद्यपान को वह सर्वथा त्याग दे। अपने स्थान में एकाकी ही शयन करे। मद्य पीने तथा दूसरों के साथ शयन करने से प्रमादवश या स्वप्नावस्था में मन के गुप्त रहस्यों के प्रकट हो जाने का भय बना रहता है। दूत को चाहिए कि वह शत्रु-देश के कृत्यपक्ष को फोड़ देने का कार्य तथा अकृत्यपक्ष को वश में कर देने का कार्य अपने गुप्तचरों द्वारा जाने। राजा और अमात्य आदि उच्चाधिकारियों का पारस्परिक राग-द्वेष तथा राजा की बुराइयों का भेद वह तापस, वैदेहक आदि गुप्तचरों के द्वारा अवगत करे। अथवा तापस, वैदेहक आदि के शिष्यों, चिकित्सक तथा पाखण्डी के वेश में रहने वाले गुप्तचरों या उभयवेतनभोगी गुप्तचरों के द्वारा वह शत्रुराजा के रहस्यों का पता करता रहे। यदि इन गुप्तचरों से भी काम बनता न देखे तो, भिक्षुक, मत्त, उन्मत्त तथा सोते में प्रलाप करने वाले व्यक्तियों के माध्यम से शत्रु के कार्यों का पता लगाता रहे। तीर्थस्थानों, देवालयों, ग हचित्रों तथा लिपिसंकेतों द्वारा भी वह वहाँ के व त्तान्त जाने। ठीक-ठीक समाचार अवगत हो जाने पर वह तदनुसार भेदरूप उपायों का प्रयोग करे। दूत को चाहिए कि शत्रु के पूछे जाने पर भी वह अपने मन्त्रिपरिषद् का ठीक-ठीक परिचय न दे। 'आप तो सर्वज्ञ हैं' इतना कहकर बात को टाल दें। यदि इतना बताने पर भी शत्रुराजा को सन्तोष न हो तो उतना मात्र परिचय देना चाहिए, जितने से अपने कार्य की सिद्धि हो जाये।

कार्य सिद्ध हो जाने पर भी यदि शत्रुराजा दूत को अपने ही यहाँ रोके रखना चाहता है, तो दूत को, राजा की इस अप्रत्याशित नीति के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। उसको विचार करना चाहिए कि 'क्या शत्रुराजा को मेरे स्वामी पर आने वाली किसी सन्निकट विपत्ति का पता लग गया है। या कि वह मेरे जाने से पूर्व ही अपने किसी व्यसन का प्रतीकार करना चाहता है। अथवा वह पार्ष्णिग्राह (स्वामीराजा का शत्रु एवं शत्रुराजा का मित्र) तथा आसार (शत्रुराजा के मित्र का मित्र) को मेरे स्वामी के विरोध में युद्ध करने के लिए तो नहीं उकसाना चाहता। या उसका इरादा मेरे स्वामी के अमात्य आदि को उससे कुपित करने का तो नहीं है। या कि वह किसी आटविक को भिड़ाने का षड्यंत्र तो नहीं रच रहा है। उसकी योजना ऐसी तो नहीं है कि वह मित्र (स्वामिराजा के सम्मुख प्रदेश का मित्रराजा) तथा आक्रंद (स्वामिराजा के प ष्ठप्रदेश का मित्र राजा) आदि मित्र राष्ट्र ों के राजाओं को मरवाना चाहता हो। या अपने ऊपर किये गये आक्रमण का, अपने अमात्य आदि के कोप का तथा अपने आटविक का प्रतीकार तो नहीं करना चाहता है। या कि वह मेरे स्वामी के इस प्रस्तुत आक्रमण को टालने तथा रोकने का यत्न तो नहीं कर रहा है। अथवा वह युद्ध की तैयारी के लिए धातुसंग्रह, किलाबन्दी तथा सैन्य-संग्रह तो नहीं कर रहा है। या वह सैन्य-शिक्षण तथा उचित देश-काल की आकांक्षा में तो नहीं है। अथवा किसी प्रकार के तिरस्कार, प्रीति, विवाह-सम्बन्ध, दोष-वैमनस्य आदि के लिए तो वह मुझे नहीं रोक रहा है।' इस प्रकार के रहस्यों, कारणों और उद्देश्यों के सम्बन्ध में दूत अच्छी तरह से छानबीन करे। रोके जाने के कारणों का ठीक-ठीक पता लग जाने पर वह उचित समझे तो रुके अन्यथा वहाँ से चल दे। अपने स्वामी की अभीष्ट-सिद्धि के लिये वह चाहे तो उसी नगर में रुककर, गुप्त पुरुषों के द्वारा राजा तक सूचनाएं पहुँचा कर, उनका प्रतीकार करवावे। अपने स्वामी का ऐसा संदेश, जिसको सुनकर शत्रुराजा क्रोधित हो उठे, सुनाने पर, दूत को बिना अनुमति लिये ही वहाँ से कूच कर देना चाहिये अन्यथा उसका पकड़ा जाना निश्चित है।

शत्रुप्रदेश में अपने स्वामी का संदेश लेकर जाना; शत्रुराजा का संदेश लाने के लिए जाना, सन्धिभाव को बनाये रखना, समय आने पर अपने पराक्रम को दिखाना, अधिक से अधिक मित्र बनाना, शत्रु

के कृत्यपक्ष के पुरुषों को फोड़ देना, शत्रु के मित्रों को उसके विमुख कर देना, तीक्ष्ण, रसद आदि गुप्तचरों एवं अपनी सेना को भगा देना, शत्रु के बांधवों एवं रत्नों का अपहरण कर लेना, शत्रु के देश में रहकर गुप्तचरों के कार्यों का निरीक्षण करना, समय आने पर पराक्रम दिखाना, सन्धि की चिरस्थिति के निमित्त जमानत-रूप में रखे हुए राजकुमार को मुक्त कराना और मारण, मोहन उच्चाटन आदि का प्रयोग करना, ये सभी दूत के कार्य हैं। राजा को चाहिये कि वह उपर्युक्त सभी कार्य दूतों के द्वारा करवाये और शत्रुओं के पीछे अपने दूतों या गुप्तचरों को लगाये रखे। अपने देश में तो वह शत्रुदूतों के कार्यों का पता प्रकट रूप से लगाये, किन्तु शत्रुदेश में उनकी सूचनायें गुप्त रूप से संग्रह करवाये।

७. राजा द्वारा आत्मरक्षा के उपाय

आचार्य कौटिल्य के अनुसार अपने निकटवर्ती सम्बन्धियों तथा शत्रुओं से सुरक्षित राजा ही राज्य की रक्षा कर सकता है। राजा को चाहिये कि सर्वप्रथम वह अपनी रानियों और अपने पुत्रों से अपनी रक्षा का प्रबन्ध करे। रानियों से किस प्रकार राजा को आत्मरक्षा करनी चाहिये, इसके उपाय आगे बताये जायेंगे।

अपने पुत्रों से आत्मरक्षा करने के लिए राजा को चाहिऐ कि वह जन्म से ही राजपुत्रों पर कड़ी निगरानी रखे, क्योंकि केकड़े की भाँति राजपुत्र भी अपने पिता के भक्षक होते हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य भारद्वाज का कहना है कि 'यदि राजकुमारों में पित भक्ति की भावना न दिखाई दे तो उनका चुपचाप वध कर डालना ही श्रेयस्कर है।'

आचार्य विशालाक्ष इसको पापकर्म कहते हैं। उनका कथन है कि 'निरपराध बच्चों को इस प्रकार मरवा डालना घोर पाप और अतिक्रूरता है, इस प्रकार तो क्षत्रिवंश ही सर्वथा नष्ट हो जायेगा। इसलिए यदि राजकुमारों में पित भक्ति न दिखाई दे तो उन्हें किसी स्थान में कैद करके रखा जाना उचित है।' आचार्य पराशर के अनुयायी इसके भी विरुद्ध हैं। उनका अभिमत है कि 'यह तो सर्पभय के समान है। जैसे घर में घुसा हुआ सांप भयावह होता है, उसी प्रकार पुत्र को कैद में रखना भी भयप्रद है, क्योंकि राजकुमार को जब चाहे पता चल जायेगा कि पिता ने अपने वध के भय से उसे कैद में डाल रखा है, तो वह पिता के घर में रहता हुआ सरलता से उसके वध की योजना तैयार कर सकता है। इसलिए राज्य की सीमा के दूरस्थ दुर्ग में ही राजकुमार को रखना श्रेयस्कर है।'

आचार्य पिशुन इस युक्ति से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि 'दूरस्थ दुर्ग में राजपुत्र को रखना उसी प्रकार भयावह है; जैसे आक्रमण करने से पूर्व मेढ़ा कुछ पीछे हट जाता है और पुनः दुगने वेग से झपट पड़ता है। राजकुमार को जब अपने कैद होने का कारण विदित हो जाएगा तो वह अपनी योजना को पूरा करने के लिए दुर्गपाल को मित्र बनाकर, उसकी सहायता से अपने पिता पर आक्रमण कर सकता है। इसलिए राजकुमार को, राज्य की सीमा से बाहर किसी पड़ोसी राजा के दुर्ग में रखना ही अधिक उपयुक्त है।'

आचार्य कोणपदन्त की कुछ दूसरी ही स्थापना है। उनकी स्थापना है कि 'राजकुमार को परराज्याश्रित करने का परिणाम यह होगा कि जैसे गाय का बछड़ा दूसरे के हाथ में सौंप देने से इच्छानुसार वह कभी भी गाय को दुह सकता है वैसे ही राजकुमार का संरक्षक पड़ोसी राजा, राजकुमार को अपने वश में करके उचित-अनुचित रीति से इच्छानुसार विजिगीषु से धन आदि ले सकता है। इसलिए राजकुमार को ननिहाल में रख देना ही उचित जान पड़ता है।'

आचार्य वातव्याधि इस सलाह पर आपत्ति प्रकट करते हैं। उनका परामर्श है कि 'राजकुमार को उसके मात कुल में रखना एक ध्वजा के समान है; जिसको मात कुल वाले अपनी आमदनी का वैसा ही साधन बनाकर उपयोग कर सकते हैं,जैसा कि अदिति नाम की भिक्षुणी और कौशिक नाम के सपेरे जीविका-निर्वाह के लिए अपने पेशेवर कौतुकों को दिखाते फिरते हैं। इसलिए राजकुमार को, उसकी इच्छानुसार, विषय-भोग में लिप्त रहने देना चाहिए, क्योंकि विषय-वासनाओं में उलझे हुए

राजकुमारों को पिता से द्रोह करने का अवकाश ही नहीं मिलता है।

आचार्य कौटिल्य इस सिद्धान्त को, जीते-जी राजपुत्रों की हत्या कर देने के समान अनर्थकारी बताते हैं। उनका कहना है 'राजकुमारों को इस प्रकार विषय-भोग में फंसाना उन्हें जीते ही म त्यु के मुख में दे देना है। जिस प्रकार घुन लगी लकड़ी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार अशिक्षित राजकुमारों का कुल बिना युद्ध आदि के ही विनष्ट हो जाता है। इसलिए राजा को चाहिए कि जब रानी ऋतुमती हो, तो (संतति की) ऐश्वर्य, विद्या, बुद्धि के निमित्त ऋत्विक्, इंद्र और बुहस्पति आदि देवताओं के लिये हविदान किया जाये। जब महारानी गर्भवती हो जाये तो कौमारभ त्य अंग के ज्ञाता शिशु-चिकित्सकों के निर्देशानुसार गर्भ की पुष्टि तथा उसके सुखपूर्वक प्रजनन के लिए यत्न किया जाये। राजकुमार के पैदा हो जाने पर विद्वान् पुरोहित विधिपूर्वक उसका संस्कार करें। जब वह समझने योग्य हो जाये तो विभिन्न विषयों के पारंगत विद्वान् उसको शिक्षा दें।

आचार्य आंभ के मतानुयायियों का कहना है कि 'सत्रियों (गुप्तचरो) में से कोई एक सत्री राजकुमार को म गया, द्यूत, मद्य और स्त्रियों का प्रलोभन दें। यह भी कहे कि पिता पर आक्रमण करके तुम राज्य को ले लो, फिर मौज करो। इस पर दूसरा सत्री कहे ऐसा करना बहुत बुरा है।'

आचार्य कौटिल्य के मतानुसार राजकुमार के भीतर यह कुबुद्धि जगाना बहुत ही अनिष्टदायी है। उनका तर्क एवं सुझाव है कि 'सरलमति बालकों में ऐसी कुबुद्धि पैदा करना महादोष कहा जायेगा। जैसे मिट्टी का नया बर्तन घी, तेल आदि जिस भी नये द्रव्य का स्पर्श पाकर उसी को चूस लेता है, ठीक वैसे ही, अपरिपक्व बुद्धिवाले बालक को जो कुछ भी सिखाया जाता है, उसको वह शास्त्र-उपदेश की भाँति अमिट रूप से बुद्धि में जमा लेता है। इसलिये सरलमति बालकों को धर्म, अर्थ का ही उपदेश देना चाहिये, अनर्थ का नहीं।' सत्री लोग हम आपके ही हैं। इस अपनत्व को दर्शित करते हुए, राजपुत्र का पालन करें। यदि राजकुमार का युवा मन परस्त्री के लिए बेचैन हो उठता है तो उस समय उसके संरक्षकों को चाहिये कि आर्यावेश धारण की हुई अपवित्र, घ ण्य स्त्रियों को रात्रि में एकांत में राजकुमार के निकट भेज कर उसके मन में ऐसी घ णा तथा खिन्नता पैदा करायें कि परस्त्री की चाह से उसका मन सर्वथा फिर जाये। यदि वह मद्य पीने की इच्छा करे तो मद्य में कोई ऐसा पदार्थ मिलाकर उसको दिया जाये, जिससे कि मद्य के लिए उसकी अरुचि हो जाये। यदि वह जुआ खेलने की कामना करे तो छली-कपटी लोगों के साथ बैठाकर उसको इतना उद्विग्न किया जाये कि आगे से वह जुआ खेलने का नाम भी न ले। यदि वह शिकार खेलना चाहता है तो कपटवेश धारण किये हुये राजपुरुष बेचैन करके उधर से उसके मन को खिन्न कर दे। यदि वह पिता पर आक्रमण करने की इच्छा रखता है तो पहिले तो उसे बढ़ावा दिया जाये किन्तु ऐन मौके पर उससे कहें 'देखो राजा के साथ कभी द्वेष नहीं करना चाहिये। यदि तुम असफल हो गये तो तुम्हारी म त्यु अवश्यंभावी है और जीत भी गये तो पित घातक होने के कारण तुमको घोर नरक भोगना पड़ेगा, सारी प्रजा तुमको लानत देगी और कोई असंभव नहीं कि एकमत होकर प्रजा तुम्हारा प्राणान्त कर दे। इसलिए तुम्हें इस भयंकर पाप-कर्म से बचना चाहिए।' यदि एक ही राजपुत्र हो, और वह पित द्रोही निकले तो उसे कैद कर देना चाहिये। यदि पुत्र अधिक हों तो उस द्रोही पुत्र को सीमांत प्रदेश अथवा किसी दूसरे देश में प्रवासित कर देना चाहिये, जहाँ कि उचित अन्न-वस्त्र प्राप्त न हों और जहाँ की प्रजा की उसके प्रति कोई सहानुभूति न हो। इसके विपरीत जो राजपुत्र आत्मगुणसम्पन्न हों, उसको सेनापति या युवराज के उच्च पद पर नियुक्त किया जाये।

राजपुत्रों की तीन श्रेणियां हैं : १- बुद्धिमान्, २- आहार्यबुद्धि और ३- दुर्बुद्धि। जो धर्म और अर्थविषयक उपदेश को उचित रीति से ग्रहण करके तदनुसार आचरण करता है, 'बुद्धिमान्' है। जो धर्म और अर्थ को समझ तो लेता है, किन्तु तदनुसार अपना आचरण नहीं बना पाता उसे'आहार्यबुद्धि' कहते हैं। जो बुराइयों में लीन तथा धर्म और अर्थ से द्वेष रखता है वह 'दुर्बुद्धि' है।

यदि राजा का एक ही पुत्र हो और वह भी दुर्बुद्धि निकले तो राजा उस दुर्बुद्धि राजकुमार से ऐसा पुत्र पैदा कराने का यत्न करे, जो राजा बनने के योग्य हो। यदि ऐसा भी संभव न हो तो अपनी

पुत्री के पुत्र को राज्य का उत्तराधिकार संभालने के योग्य बनाये। यदि राजा बूढ़ा हो गया हो, या सदैव रुग्ण ही रहता हो, तो अपने किसी ममेरे भाई अथवा अपने ही कुल के किसी बंधु से या किसी गुणवान् सामंत से अपनी स्त्री में नियोग कराकर पुत्र पैदा करवाये। किन्तु अयोग्य अशिक्षित पुत्र को राज्यभार न सौंपे। यदि अनेक पुत्रों में एक पुत्र दुर्बुद्धि हो तो उसे किसी दूसरे देश में भेज कर रोक रखे। वैसे राजा को चाहिए कि सर्वदा ही वह अपने पुत्रों की कल्याण-कामना करता रहे। यदि सभी पुत्र राजा को एक समान प्रिय हों, तो उस अवस्था में वह ज्येष्ठ पुत्र को ही राजा बनावे। अथवा वे सभी भाई मिलकर राज्य को संभालें, क्योंकि यदि राज्य का संचालन सामुदायिक ढंग से हुआ तो निश्चित ही वह राज्य दुर्जय होता है। सामुदायिक राज्य-व्यवस्था से एक बड़ा लाभ यह भी है कि एक व्यक्ति के व्यसनग्रस्त हो जाने पर दूसरे व्यक्ति उसके कार्य को संभाल लेते हैं और इस प्रकार सदैव प्रजा की सुखमय अवस्था बनी रहती है।

राजपुत्रों से अपनी रक्षा करता हुआ राजा रानियों से भी सदैव सावधान रहे। इसके उपाय रूप में राजा अपने आवास ग ह का विशिष्ट प्रबन्ध करे। इसके लिए उसको वास्तुविद्या के विशेषज्ञ (इंजीनियर) जिस स्थान को उपयुक्त बतायें, उसी स्थान पर ऐसे अन्तःपुर का निर्माण कराना चाहिये, जिसके चारों ओर परकोटा एवं खाई और जिसमें अनेक ड्यौढ़ियाँ हों। या कोशागार-निर्माण के विधानानुसार अन्तःपुर के बीच में राजा अपना महल बनवाये, या ऐसा मकान बनवाये, जिसकी दीवारों तथा गलियों का पता न लगे, ऐसे मकान को मोहनग ह (भुलभलैया) कहते हैं, उसके बीच में राजा अपने रहने का मकान बनवाये, या भूमि को खुदवा कर उसमें घर बनवाये, उस भूमिग ह के दरवाजे पर, समीप ही किसी देवता की मूर्ति स्थापित करवाये, उसमें आने जाने के लिए गुप्त सुरंगें हों, या तो फिर ऐसा महल बनवाये, जिसकी दीवारों के भीतर गुप्त मार्ग हो, अथवा पोले खम्बों के भीतर आने-आने तथा चढ़ने-उतरने का रास्ता हो, अथवा आपत्तिकाल के निवारण के लिए यन्त्रों के आधार पर ऐसा वासग ह बनवाये जिसको इच्छानुसार नीचे-ऊपर तथा इधर-उधर हटाया जा सके, अथवा आपत्तिकाल के उपस्थित हो जाने पर ऐसे भवन का निर्माण करवाये। यदि राजा को इस बात की आशंका हो कि उसके समान ही दूसरा शत्रु राजा भी नीति-निपुण वास्तुकलाविद् है और वह गुप्तभवन-निर्माणसम्बन्धी सभी रहस्यों को जानता है तो वह अपनी बुद्धि के अनुसार उसमें परिवर्तन कर दे। मनुष्य की हड्डी में बांस के रगड़ने से उत्पन्न अग्नि का स्पर्श, यदि अथर्ववेद के मन्त्रोच्चारण के साथ-साथ बाईं ओर से तीन परिक्रमा करते हुए, कराया जाये तो उस अंतःपुर को आग नहीं जला सकती; और न दूसरी अग्नि ही वहाँ जल सकती है। बिजली के गिरने से जले हुए पेड़ की राख लेकर उसमें उतनी ही मिट्टी मिला दी जाये और दोनों को धतूरे के पानी के साथ गूँथकर यदि उसका दीवारों पर लेपन किया जाये तब भी वहाँ दूसरी अग्नि असर नहीं कर सकती है। गिलोय, शंखपुष्पी, कालीपांढरी और करौंदे के पेड़ पर लगे हुए बंदे की माला आदि के रख देने; अथवा सहिजन (सैजन) के पेड़ के ऊपर पैदा हुए पीपल के पत्तों के बंदनवार बाँध देने से अंतःपुर में सर्प, बिच्छु आदि विषैले जंतुओं तथा दूसरे विषों का कोई प्रभाव नहीं होता है। बिल्ली, मोर, नेवला और म ग आदि भी सांपों को खा जाते हैं। अन्न आदि में सर्प-विष की आशंका होने पर तोता, मैना और बड़ा भौरा चिल्लाने लगते हैं। विष के समीप होने पर क्रौंच पक्षी विह्वल हो जाता है। जीवंजीव (चकोर के समान एक पक्षी) नामक पक्षी जहर को देखकर मुरझा जाता है। कोयल विष को देखकर मर जाती है। विष को देखकर चकोर की आँखें लाल हो जाती हैं। इन सब उपायों के द्वारा राजा अपने आप को तथा अंतःपुर को अग्नि, सर्प और विष के भय से बचा कर रखे।

राजमहल के पीछे कक्ष्याभाग में रनिवास, उसके समीप ही प्रसूता, बीमार तथा असाध्य रोगिणी स्त्रियों के लिए अलग-अलग तीन आवास बनवाये जायें और उन्हीं के साथ छोटे-छोटे उद्यान तथा सरोवरों का निर्माण किया जाये। बाहर की ओर राजकुमारियों और युवक राजकुमारों के लिए स्थान बनवाये जायें। राजमहल के आगे हरी-हरी घास और फूलों से सजे हुए उपवन होने चाहिए।

उसके बाद मंत्रसभा का स्थान, फिर दरबार और तदनन्तर युवक राजकुमार, समाहर्त्ता-सन्निधाता आदि अध्यक्षों के प्रधान कार्यालय होने चाहिए। कक्ष्याओं के बीच-बीच में क चुकी तथा अंतःपुररक्षकों की उपस्थिति रहे।

रनिवास के अन्दर जाकर राजा किसी विश्वस्त बूढ़ी परिचारिका के साथ महारानी से मिले। अकेला किसी रानी के पास न जाये, क्योंकि ऐसा करने से कभी कभी बड़ा धोखा हो जाता है। कहा जाता है कि पहले कभी भद्रसेन नामक राजा के भाई वीरसेन ने उसकी रानी से मिलकर छिपे में भद्रसेन राजा को मार डाला था। इसी प्रकार माता की शय्या के नीचे छिपे हुए राजकुमार ने अपने पिता कारूश को मार डाला था। इसी प्रकार काशीराज की रानी ने धान की खोलों में मधु के बहाने विष मिलाकर अपने पति को मार डाला था। इसी भाँति विष में बुझे नूपुर के द्वारा वैरन्त्य राजा को और विष-बुझी करघनी की मणि से सौबीर राजा को, शीशे के द्वारा जालूथ राजा को और अपनी वेणी में शस्त्र छिपाकर बिडूरथ राजा को, उनकी रानियों ने धोखे में मार डाला था। इसलिए रानियों से मिलते समय, राजा को इस प्रकार की अद ष्ट विपत्तियों में सावधान रहना चाहिए।

राजा को चाहिए कि वह मुंडी, जटी इसी प्रकार के अन्य धूर्त और बाहर की दासियों के साथ रानियों का संपर्क न होने दे। रानियों के सगे-सम्बन्धी भी उन्हें प्रसव या बीमारी की अवस्था के अतिरिक्त न देखने पावें।

अस्सी वर्ष की अवस्था के पुरुष तथा पचास वर्ष की बूढ़ी स्त्रियाँ माता-पिता की भाँति रानियों के हितचिंतन में रत रहे। अंतःपुर के दूसरे व द्ध तथा नपुंसक पुरुष रानियों के चरित्र का ध्यान रखें और उनको राजा की हितकामना में लगाये रखें। अंतःपुर के सभी परिचारक-परिचारिकायें अपने-अपने स्थानों पर ही रहें, एक दूसरे के स्थान पर न जाने पावें। इसी प्रकार भीतर का कोई भी आदमी बाहर के आदमियों से न मिलने पावे। जो भी वस्तु महल के बाहर आवे तथा महल में जावे उसका भली-भाँति निरीक्षण कर और उसके सम्बन्ध में सारे विवरण रजिस्टर में लिख लेने चाहिएं। राजमहल के बाहर-भीतर जाने-आने वाली प्रत्येक वस्तु पर राजकीय मुहर लग जानी चाहिये।

अपने निकट सम्बन्धियों से आत्मरक्षा में सावधान राजा को बाह्य व्यक्तियों से अपनी रक्षा के लिए अधोलिखित विशिष्ट प्रबन्ध करने चाहिये :-

प्रातःकाल राजा के बिस्तर से उठते ही, धनुष-बाण लिये स्त्रियाँ उसे घेर लें। शयनकक्ष से उठकर राजा जब दूसरे कक्ष में प्रवेश करे तो वहाँ कुर्ता, पगड़ी पहिने हुए नपुंसक तथा दूसरे सेवक राजा की देख-रेख के लिए उपस्थित रहें। तीसरे कक्ष में कुबड़े, बौने एवं निम्न जाति के परिजन राजा की रक्षा करें। चौथे कक्ष में मंत्रियों, सम्बन्धियों और हाथ में भाला लिये द्वारपालों द्वारा राजा की रक्षा होनी चाहिए। वंश-परम्परा के अनुगत, उच्चकुलोत्पन्न, शिक्षित, अनुरक्त और प्रत्येक कार्य को भली-भाँति समझने वाले पुरुषों को राजा अपना अंगरक्षक नियुक्त करे। किन्तु धन-सम्मान-रहित विदेशी व्यक्ति को तथा एक बार प थक् होकर पुनः नियुक्त स्वदेशीय व्यक्ति को भी राजा अपना अंगरक्षक कदापि नियुक्त न करे। राजमहल की भीतरी सेना, राजा और रनिवास की रक्षा करे। माहानसिक को चाहिए कि वह किसी एकांत स्थान में भोज्य पदार्थों का स्वाद ले-लेकर उन्हें सुस्वादु तथा सुरक्षा से तैयार कराये। भोजन के तैयार हो जाने पर राजा पहिले अग्नि तथा पक्षियों को बलि प्रदान कर, फिर स्वयं खावे। जिस अन्न मे ंविष मिला हो उसे अग्नि में डालने से अग्नि और लपट, दोनों नीले रंग के हो जाते हैं तथा उसमें चट-चट शब्द होता है। विषमिश्रित अन्न के खाने पर पक्षियों की भी म त्यु हो जाती है। विषयुक्त अन्न की भाप मयूर ग्रीवा जैसे रंग की होती है; वह भोजन शीघ्र ही ठण्डा हो जाता है; हाथ के स्पर्श या तोड़ने-मोड़ने से उसका रंग बदल जाता है, उसमें गाँठ-सी पड़ जाती है, और वह अन्न अधपका ही रह जाता है। विष मिली दाल जल्दी ही सूख जाती है, फिर से आँच पर रखा जाये तो मट्ठे की तरह वह फट जाती है; उसकी झाग काली तथा वह अलग-अलग हो जाती है, और उसका स्वाद, स्पर्श, उसकी सुगंध आदि सब जाते

रहते हैं। विषयुक्त रसेदार तरकारी विरंगी-विकृत हो जाती है, उसका पानी अलग तैरता रहता है और उसके ऊपर रेखा-सी खिंच जाती है। यदि घी, तेल आदि रसिक पदार्थों में विष मिला हो तो उनमें नीले रंग की रेखाएं तैरने लगती हैं, विष-मिश्रित दूध में ताम्रवर्ण की, शराब तथा पानी में काले रंग की, दही में श्यामवर्ण की और शहद में सफेद रंग की रेखाएं दिखाई देती हैं। आम, अनारआदि द्रव्यों में विष मिला हो तो वे सिकुड़ जाते हैं, उनमें सडांध आने लगती है, और पकने पर उनका वर्ण कुछ कालापन एवं भूरापन लिये होता है। यदि सूखे हुए पदार्थों में विष मिला हो तो वे छूते ही चूर-चूर होकर विवर्ण हो जाते हैं। विषमिश्रित ठोस पदार्थ मुलायम और मुलायम पदार्थ ठोस हो जाता है। विषमय वस्तु के समीप रेंगने वाले छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े मर जाते हैं। ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों पर यदि विष का प्रयोग किया गया हो तो उनमें स्थान-स्थान पर धब्बे पड़ जाते हैं। यदि कपड़ा सूती हुआ तों उसका सूत और ऊनी हुआ तो उसकी रुआँ उड़ जाती है। सोने, चांदी, स्फटिक मणि आदि धातुओं पर यदि विष का प्रयोग किया गया हो तो उनकी आभा पंकिल दिखाई देती है, उनकी चमक, भारीपन और पहिचान आदि सब जाते रहते हैं।

विष देने वाले का मुँह सूख जाता है, उसके चेहरे का रंग बदल जाता है, बातचीत करते हुए उसकी वाणी लड़खड़ाने लगती है, उसको पसीना, कंपकपी तथा जंभाई आने लगती है, बेचैन होकर वह गिर पड़ता है, संदेहवश दूसरों की बातें वह ध्यानपूर्वक सुनने लगता है, बात-बात में वह आवेश करने लगता है; अपने कार्य और अपने स्थान पर उसका मन स्थिर नहीं रह पाता है।

विषविद्या के जानकार और वैद्य राजा के समीप अवश्य रहें। वैद्य को चाहिए कि औषधालय में स्वयं खाकर परीक्षा की हुई औषधि को वह राजा के सामने लाकर उसमें से कुछ को पकाने-पीसने वाले लोगों और कुछ स्वयं भी खाकर पुनः राजा को दे। इसी प्रकार जल तथा मद्य को भी, परीक्षा करने के उपरांत राजा को देना चाहिए।

दाढ़ी-मूँछ बनाने वाले नाई तथा वस्त्रालंकरण धारण कराने वाले परिचारकों को चाहिए कि वे स्नान करके स्वच्छ वस्त्र धारण किये हाथों को अच्छी तरह धोकर राजमहल के अन्दर रहने वाले कंचुकी आदि से मुहर लगे हुए उस्तरा और वस्त्राभूषण को लेकर राजा की परिचर्या करें। राजा को स्नान कराना, उसके अंगों को दबाना, बिस्तर बिछाना, कपड़े धोना और माला बनाना आदि कार्यो को दासियाँ ही करें, अथवा दासियों की देख-रेख में उस कार्य के जानकार लोग करें। दासियों को चाहिए कि अपनी आँखों से देखकर ही वे राजा को वस्त्रालंकरण पहनावें। स्नान के समय उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं, जैसे-उबटन, चन्दन, सुगन्धित चूर्ण तथा पटवास आदि को, दासियां पहले अपनी छाती व बाँह पर लगाकर आजमा लें और तदनंतर राजा पर उसका प्रयोग करें। यही बात दूसरे स्थान से आई हुई वस्तुओं के सम्बन्ध में भी जान लेनी चाहिए।

खेल दिखाने वाले नट-नर्तक, हथियार, आग, विष आदि के अतिरिक्त दूसरे खेलों को ही राजा के सामने दर्शित करें। नट-नर्तकों के उपयोग में आने वाली सामग्री, जैसे-वादन, वस्त्र, घोड़े, अलंकरण आदि, राजमहल से ही दी जानी चाहिए।

विश्वस्त प्रधान पुरुष के साथ होने पर ही राजा पालकी तथा घोड़े आदि यान-वाहनों पर चढ़े। विश्वस्त नाविक के रहने पर ही नौका पर चढ़े। दूसरी नाव पर बंधी एवं वायु से चालित नाव पर वह कदापि न बैठे। राजा जब नौका-विहार करे तो, सुरक्षा के लिए, नदी के दोनों तटों पर सेना तैनात रहनी चाहिएं मछुओं द्वारा भलीभाँति जाँच किए गए घाट पर ही वह स्नान करे। इसी प्रकार सपेरों द्वारा परिशोधित उद्यान में ही वह भ्रमण करे। चोर तथा व्याघ्र आदि से रहित, कुत्ते रखने वाले शिकारियों के साथ राजा, चलते हुए लक्ष्य पर निशाना साधने के उद्देश्य से जंगल में जाये।

दर्शनार्थ आये हुए किसी सिद्ध या तपस्वी से मिलते समय राजा, अपने विश्वस्त सशस्त्र पुरुष को साथ ले ले। अपने मंत्रि-परिषद् के साथ ही वह सामंत राजा के दूत से मिले। घोड़े, हाथी या रथ पर सवार युद्ध के लिए प्रस्थान करने वाली सेना का वह युद्धोचित कवच आदि पहिन कर सैनिक

वेश में निरीक्षण करे। बाहर जाते या बाहर से आते समय, राजा हाथ में दण्ड लिये रक्षकों द्वारा दोनों ओर से सुरक्षित मार्ग पर चले। ऐसा प्रबंध हो कि रास्ते भर में कहीं भी राजा को शस्त्ररहित पुरुष, संन्यासी या लूला-लंगड़ा, अपंग व्यक्ति न दिखाई दे। पुरुषों की भीड़ में भी वह कदापि न घुसे। किसी देवालय, सभा, उत्सव तथा पार्टी आदि में वह शामिल होने जाय तो कम से कम दस सिपाही तथा सेनानायक उसके साथ उपस्थित रहें। विजय की इच्छा रखने वाला राजा जैसे अपने गुप्तचरों द्वारा दूसरों को कष्ट पहुँचाता है, उसी प्रकार दूसरों के द्वारा दिये गये कष्टों से भी वह अपनी रक्षा करे।

८. राजा की दिनचर्या और कर्त्तव्य

राजा के उन्नतिशील होने पर ही उसका सारा भ त्यवर्ग उन्नतिशील होता है। इसके विपरीत राजा के प्रमादी होने पर सारा भ त्यवर्ग प्रमाद करने लगता है। उस दशा में प्रमादित भ त्यवर्ग राज्यकार्यों को चुपचाप पी जाता है। ऐसा राजा शत्रुओं के धोखे में आ जाता है। इसलिए राजा को उचित है कि वह अपने आपको सदा ही उन्नतिशील बनाये रखे। राजकार्य को व्यवस्थित ढंग से संचालित करने के लिए वह दिन और रात आठ-आठ घड़ियों में बांट दे। अथवा पुरुष की छाया से भी वह समय का विभाजन कर सकता है।

सूर्योदय से लेकर जब तक पुरुष की छाया तिगुनी लंबी रहे, वह दिन का पहिला आठवाँ हिस्सा है। इस छाया को 'त्रिपौरुषी' छाया कहते हैं। इसी प्रकार वह छाया जब एक पुरुष के बराबर लम्बी रह जाये, तो वह दिन का दूसरा भाग है। उसको 'एकपौरुषी' छाया कहते हैं। तदनंतर वही 'एकपौरुषी' छाया घटकर जब चार अंगुल मात्र रह जाय तो वह दिन का तीसरा भाग है। इसको 'चतुरंगुली' छाया कहते हैं। उसके बाद का समय मध्याह्न कहलाता है। दिन का यह चौथा भाग है। मध्याह्न के उपरांत इसके विपरीत क्रम से चतुरंगुला, पौरुषी, त्रिपौरुषी और दिनांत, ये चार भाग हैं। इस प्रकार दिन के ये आठ भाग हुए।

पूर्वार्द्ध के प्रथम भाग में राजा रक्षा-सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण करे और बीते हुए दिन के आय-व्यय की जाँच करे। दूसरे भाग में वह पुरवासियों तथा जन-पदवासियों के कार्यों का निरीक्षण करे। तीसरे भाग में स्नान, भोजन तथा स्वाध्याय करे और चौथे भाग में बीते दिन की अवशिष्ट आमदनी को संभाले तथा उसी भाग में विभिन्न कार्यों पर अध्यक्ष आदि की नियुक्ति भी करे। उत्तरार्ध के पाँचवें भाग में वह मंत्रि-परिषद् के परामर्श से पत्र भेजे तथा आवश्यक कार्यों के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करे। इसी समय वह गुप्तचरों के कार्यों एवं गुप्त बातों के सम्बन्ध में जाने-सुने। छठे भाग में वह स्वतंत्र होकर स्वेच्छया विहार तथा विचार करे। सातवें भाग में वह हाथी, घोड़े, रथ तथा अस्त्र-शस्त्रों का निरीक्षण करे। अंतिम आठवें भाग में वह सेनापति के साथ युद्ध आदि के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करे। दिनांत के बाद वह संध्योपासन करे।

इसी प्रकार रात्रि के पहिले भाग में वह गुप्तचरों को देखे। दूसरे भाग में स्नान, भोजन, स्वाध्याय, तीसरे भाग में संगीत सुनता हुआ शयन करे और चौथे , पाँचवें भाग तक सोता रहे। रात्रि के छठे भाग में संगीत द्वारा जागा हुआ वह अर्थशास्त्र सम्बन्धी तथा दिन में संपादित किये जाने योग्य कार्यों पर विचार करे। सातवें भाग में गुप्त-मंत्रणा करे और गुप्तचरों को यथास्थान भेजे। रात्रि के अन्तिम आठवें भाग में ऋत्विक्, आचार्य तथा पुरोहित के साथ स्वस्तिवाचन-सहित आशीर्वाद ग्रहण करे। इसी समय वह वैद्य, प्रधान रसोइयां और ज्योतिषी आदि से भी तत्संबंधी बातों पर परामर्श करे। इन सब कार्यों से निव त्त हो वह बछड़े वाली गाय और बैल की प्रदक्षिणा करके राज-दरबार में प्रवेश करे। ऊपर का काल-विभाग सामान्य-द ष्टि से निरूपित किया गया है, वैसे शक्ति तथा अनुकूल परिस्थितियों के अनुसार स्वेच्छया राजा अपनी कार्य-व्यवस्था को स्वयं भी निर्धारित कर सकता है।

राजा जब दरबार में हो तो प्रत्येक कार्यार्थी को वह बिना रोक-टोक प्रवेश करने की अनुमति दे

दे। क्योंकि जो राजा कठिनाई से प्रजा को दर्शन देता है, उसके समीप रहने वाले कर्मचारी उसके कार्यों को उलट'-पलट कर देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि राजा के अमात्य आदि उससे कुपित हो जाते हैं, राजकार्य शिथिल पड़ जाते हैं, राजा अपने शत्रुओं के अधीन हो जाता है। इसलिए राजा को उचित है कि देवालय, ऋषि-आश्रम, धूर्तपाखंडियों के केन्द्र, वेदपाठी ब्राह्मणों के संस्थान, पशुशाला आदि स्थानों का और बाल, व द्ध, रुग्ण, दुःखित, अनाथ तथा स्त्रियों से सम्बद्ध कार्यों का स्वयमेव विधिपूर्वक निरीक्षण करे। इनमें से यदि कोई कार्य अत्यावश्यक है, अथवा उसकी अवधि बीत रही है तो उसी का निरीक्षण राजा पहिले करे। राजा को चाहिए कि पहिले वह उस कार्य को देखे, जिसकी मियाद बीत चुकी है। उसको देखने में वह अधिक विलंब न करे। क्योंकि इस प्रकार अवधि बीत जाने पर कार्य या तो कष्टसाध्य हो जाता है अथवा सर्वथा असाध्य हो जाता है।

राजा को चाहिए कि पुरोहित एवं आचार्य के साथ यज्ञशाला में उपस्थित होकर उन विद्वानों और तपस्वियों के कार्यों को खड़े ही खड़े अभिवादनवूर्वक देखे। तपस्वियों तथा मायावी लोगों के कार्यों का निर्णय राजा, अकेला न करके वेदविद् विद्वानों के साथ बैठकर करे। अकेले वह उन लोगों के कोप का कारण न बने। उद्योग करना, यज्ञ करना, अनुशासन करना, दान देना, शत्रु ओर मित्रों में-उनके गुण-दोषों के अनुसार समान व्यवहार करना, दीक्षा समाप्त कर अभिषेक करना, ये सब राजा के नैमित्तिक व्रत हैं।

प्रजा के सुख में राजा का सुख ओर प्रजा के हित में राजा का हित है। अपने आप को अच्छे लगने वाले कार्यों को करने में राजा का हित नहीं, बल्कि उसका हित तो प्रजाजनों को अच्छे लगने वाले कार्यों के सम्पादन करने में है। इसलिए राजा को चाहिए कि उद्योगशील होकर वह व्यवहार-सम्बन्धी तथा राज्य-सम्बन्धी कार्यों को उचित रीति से पूरा करे। उद्योग ही अर्थ का मूल है, और इसके विपरीत, उद्योगहीनता ही अनर्थों को देने वाली है। राजा यदि उद्योगी न हुआ तो उसके प्राप्त अर्थों और प्राप्तव्य अर्थों, दोनों का ही नाश हो जाता है; किन्तु जो राजा उद्योगी है, वह शीघ्र उद्योग का मधुर फल पाता है और इच्छित सुख-संपदा का उपभोग करता है।

६. जनपद

जनपद का अर्थ है राष्ट्र, देश अथवा स्वजातीय राज्य। दूसरे शब्दों में जनपद जनयुक्त भूमि है। वस्तुतः जनपद राज्य का आधार रूप है। इसलिए श्रेयस्काम राजा को यह आवश्यक है कि वह अपने जपनद के योगक्षेम की सम्पूर्ण व्यवस्था करे।

कौटिल्य लिखते हैं कि राजा को चाहिए कि दूसरे देश के मनुष्य बुलाकर अथवा अपनी देश की आबादी को बढ़ाकर वह पुराने या नये जनपद को बसाये। प्रत्येक जनपद में कम से कम सौ घर और अधिक से अधिक पाँच सौ घर वाले, ऐसे गाँव बसायें जायें जिसमें प्रायः शूद्र तथा किसान अधिक हों। एक गाँव दूसरे गाँव से कोस भर या दो कोस की दूरी से अधिक नहीं होना चाहिए, जिससे अवसर आने पर वे एक दूसरे की मदद कर सकें। नदी, पहाड़, जंगल, बेर के व क्ष, खाई तालाब, सेंमल के व क्ष, शमी के व क्ष और बरगद आदि के व क्ष लगाकर उन बसाये हुए गाँवों की सीमा निर्धारित करें।

आठ सौ गाँवों के बीच में एक **स्थानीय**; चार सौ गाँवों के समूह में एक **द्रोणमुख**; दो सौ गाँवों के बीच में एक **कार्वटिक** और दस गाँवों के समूह में **संग्रहण** नामक स्थानों की विशेष रूप से स्थापना करे। राज्य की सीमा पर अंतपाल नामक दुर्गरक्षक के संरक्षण में एक दुर्ग की भी स्थापना करे। जनपद की सीमा पर अंतपाल की अध्यक्षता में ही द्वारभूत स्थानों का भी निर्माण करे। उनके भीतरी भागों की रक्षा व्याध, शबर, पुलिन्द, चाण्डाल आदि वनचर जातियों के लोग करें।

राजा को चाहिए कि वह ऋत्विक्, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रिय आदि ब्राह्मणों के लिए भूमिदान करे, किन्तु उनसे कर आदि न ले और उस भूमि को वापिस भी न ले। इसी प्रकार विभागीय अध्यक्षों, संख्यायकों, गोपों, स्थानिकों, अनीकस्थों, वैद्यों, अश्वशिक्षकों और जंघाकरिकों आदि अपने अधिकारियों,

कर्मचारियों और प्रजाजनों के लिए भी राजा भूमि-दान करे। किन्तु इस प्रकार पायी हुई जमीन को बेचने या गिरवी रखने के लिए वर्जित कर दे। खेती के उपयोगी जो भूमि लगान पर जिस भी किसान के नाम दर्ज की जाय, उसके मर जाने के बाद राजा को अधिकार है कि वह उस भूमि को म तक किसान के पुत्र आदि को दे या न दे। किन्तु ऐसी ऊसर या बंजर जमीन जिसको किसान ने अपने श्रम से खेती योग्य बनाया है, राजा को चाहिए कि उसे कभी भी वापिस न ले, ऐसी जमीन पर किसानों को पूर्ण अधिकार प्राप्त होना चाहिए। यदि कोई किसान किसी खेती योग्य भूमि को बिना जोते-बोये परती ही डाले रहता है तो राजा को चाहिए कि ऐसे किसान से उस भूमि को छीन कर किसी जरूरतमंद दूसरे किसान को दे दे। ऐसे जरूरतमंद किसान के न मिलने पर गाँव का मुखिया या व्यापारी उस जमीन पर खेती करे। खेती करने की शर्त पर यदि कोई जमीन को ले और उसमें खेती न करे तो उससे उसका हर्जाना वसूल करना चाहिए। राजा को चाहिए कि वह अन्न, बीज, बैल और धन आदि देकर किसानों की सहायता करता रहे और किसानों को भी चाहिए कि फसल कट जाने पर सुविधानुसार धीरे-धीरे वे उधार ली हुई वस्तुओं को राजा को वापिस कर दें। किसानों की स्वास्थ्य-व द्धि और रुग्णता-निवारण के लिए राजा उन्हें परिमित धन देता रहे, जिससे कि वे धन-धान्य की व द्धि करके राजकोष को सम द्ध बनावें। किन्तु इस प्रकार की सहायता से यदि राजकोष को कोई हानि पहुंचे, तो राजा उसको बन्द कर दे; क्योंकि कोष के कम हो जाने पर राजा, नगर और जनपद-निवासियों को सताने लगता है। किसी नये कुल को बसाये जाने के लिए प्रतिज्ञात धन राजा को अवश्य देना चाहिए। अथवा राजकोष की आय के अनुसार स्वास्थ्य-सुधार के लिए राजा धन अवश्य खर्च करता रहे। यदि नगर और जनपद-निवासी राजा के द्वारा स्वास्थ्य सुधार के लिए खर्च किए गए धन को चुका दें, तो पिता के समान राजा उन पर अनुग्रह करे।

राजा को चाहिए कि वह आकर (खान) से उत्पन्न सोना-चाँदी आदि के विक्रय-स्थान, चंदन आदि उत्तम काष्ठ के बाजार, हाथियों के जंगल, पशुओं की व द्धि के स्थान, आयात-निर्यात के स्थान, जल-थल के मार्ग और बड़े-बड़े बाजारों या बड़ी-बड़ी मंडियों की भी व्यवस्था कराये। भूमि की सिंचाई के लिए राजा को चाहिए कि नदियों पर बड़े-बड़े बाँध बँधवाये, अथवा वर्षा ऋतु के जल को भी बड़े-बड़े जलाशयों में भरवा दे। यदि प्रजाजन ऐसा कार्य करना चाहते हैं तो राजा को चाहिए कि उन्हें जलाशय के लिए भूमि, नहर के लिए रास्ता ओर आवश्यकतानुसार लकड़ी आदि सामान देकर उनका उपकार करें। देवालय और बाग-बगीचे आदि के लिये भी राजा, प्रजा की भूमिदान आदि से सहायता करे। गाँव के जो मनुष्य अन्य आवश्यक कार्यों के आ जाने पर उस सहकारी उद्योग में सम्मिलित न हो सकें तो वे अपने स्थान पर नौकर तथा बैल भेज कर सहयोग दें। यदि वे ऐसा भी न करें तो अनुपात के अनुसार उनसे उनके हिस्से का सारा खर्च लिया जाये और कार्य समाप्त होने पर न तो उन्हें उसका साझीदार समझा जाय और न ही उसका लाभ उठाने दिया जाये। इस प्रकार के बड़े-बड़े जलाशयों में उत्पन्न होने वाली मछली, प्लव पक्षी और कमलदंड आदि व्यापार-योग्य वस्तुओं पर राजा का ही अधिकार रहे।

यदि नौकर-चाकर, भाई, पुत्र आदि अपने मालिक की आज्ञा का उल्लंघन करें तो राजा उन्हें उचित शिक्षा दे। राजा को चाहिए कि वह बालक, व द्ध, व्याधिग्रस्त, विपत्तिग्रस्त और अनाथ व्यक्तियों का भरण-पोषण करे। संतानहीन और पुत्रवती अनाथ स्त्रियों तथा उनके बच्चों की भी राजा रक्षा करे। नाबालिग बच्चे की सम्पत्ति पर गाँव के व द्ध पुरुषों का अधिकार रहे। उसको वे बढ़ाते रहें और बालिग हो जाने पर उसकी सम्पत्ति को उसे वापिस कर दें। इस प्रकार देव-सम्पत्ति पर भी ग्राम-व द्धों का ही अधिकार हो, जो कि उसकी व द्धि में तत्पर रहें। जब कोई पुरुष समर्थ होने पर भी, अपने लड़के-बच्चों,, स्त्रियों, माता-पिता, नाबालिक भाई, अविवाहित तथा विधवा बहिन आदि का भरण-पोषण न करे तो राजा उसे बारह पणों का दंड दे। किन्तु ये लड़के, स्त्री आदि यदि किसी कारण से पतित हो गए हों तो सम्बन्धी उनका भरण पोषण करने के लिए बाध्य नहीं है। यह निषेध माता के सम्बन्ध में नहीं, माता यदि पतिता भी हो तो उसका भरण-पोषण और उसकी

रक्षा करनी चाहिए। पुत्र तथा स्त्री के जीवन-निर्वाह का उचित प्रबन्ध किये बिना ही यदि कोई पुरुष, संन्यास ग्रहण कर ले तो राजा को उसे प्रथम साहस दंड देना चाहिए। यह दंड उस पुरुष को भी दिया जाना चाहिए जो अपनी स्त्री को संन्यासिनी हो जाने को प्रेरित करे।

जब मनुष्य के मैथुन-सम्बन्धी कामविकार शांत हो जाएं तब उसे धर्माधिकारी पुरुषों की अनुमति लेकर संन्यास आश्रम में प्रवेश करना चाहिए, इस राज्य-नियम का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को कारागार में बंद कर दिया जाये। वानप्रस्थ के अतिरिक्त कोई दूसरा संन्यासी जनपद में न रहना चाहिए, इसी प्रकार राजभक्त जनसंघ के अतिरिक्त तथा स्थानीय सहकारी संस्थाओं के अतिरिक्त कोई दूसरी संस्था संघ राज्य में न पनपने पावे, जो द्रोह या फूट फैलाने वाला सिद्ध हो।

गाँवों में कोई भी नाट्यग ह, विहार तथा क्रीडा-शालाएँ नहीं होनी चाहिए। नट, नर्तक, गायक, वादक, भाण और कुशलीव आदि गाँवों में अपना खेल दिखा कर कृषि आदि कार्यों में विघ्न उत्पन्न न करें। क्योंकि गाँवों में नाट्यशालाएँ आदि न होने से ग्रामवासी अपने-अपने कृषिकर्म में संलग्न रहते हैं, जिससे कि राजकोष में अभिव द्धि होती है और सारा देश धन-धान्य से सम द्ध होता है।

राजा को चाहिए कि वह शत्रुओं, जंगली लोगों, व्याधियों एवं दुर्भिक्षों से अपने देश को बचावे। वह उन क्रीडाओं का भी बहिष्कार कराये जो धन का अपव्यय और विलासप्रियता को बढ़ाने वाली हों। राजा को चाहिए कि दंड, विष्टि, कर आदि की बाधा से कृषि की रक्षा करे। इसी प्रकार चोर, हिंसक जंतु, विष-प्रयोग तथा अन्य कष्टों से भी किसानों के पशुओं की रक्षा करे। वल्लभ, कार्मिक, चोर, अंतपाल और व्याघ्र आदि, राजपुरुषों लुटेरों एवं हिंसक जंतुओं से ग्रस्त व्यापार-मार्गों को भी राजा परिशोधन करे। अर्थात् अपने देश से इन सब आपत्तियों को दूर करे।

इस प्रकार राजा प्रथम तो लकड़ी के जंगल, हाथियों के जंगल, सेतुबन्ध तथा खानों की रक्षा करे और तदुपरान्त आवश्यकतानुसार नये जंगल, सेतुबंध आदि का निर्माण करवाये। ऊसर भूमि में पशुओं के लिए चरागाहें बनवानी चाहिए। जिस भूमि को व क्ष-लता एवं म ग आदि के लिए छोड़ दिया गया हो, ऐसे दो कोस तक फैले हुए जंगल को वेदाध्यायी ब्राह्मणों को वेदाध्ययन एवं सोमयाग के लिए दे देना चाहिए; इसी प्रकार के तपोवनों को तपस्वियों के लिए दे देना चाहिए। ऐसे ही दो कोस परिमाण के म गवन को राजा अपने विहार के लिए तैयार कराये। उस विहारवन के दो दरवाजे हों, उसके चारों ओ खुदी हुई खाई हो, उसमें स्वादिष्ट फल, लता, गुल्म एवं व क्ष हों, वह काँटेदार पेड़ों से रहित हो, उसमें कम गहरे सरोवर हों, मनुष्यों से परिचित म ग हों, म गया के लिए वहाँ ऐसे व्याघ्र, हाथी, हथिनी तथा उनके बच्चे रखे गये हों, जिनके नख एवं दाँत न हों उसके ही समीप एक दूसरा म गवन ऐसा तैयार कराया जाए, जिसमें देश-देशान्तरों के जानवर लाकर रखे गये हों।

चंदन, पलाश, अशोक आदि लकड़ी के लिए अलग-अलग वन लगाये जायें। लकड़ी के जंगलों की सम्पूर्ण व्यवस्था, जंगलों के अध्यक्ष तथा जंगलों पर जीवन बिताने वाले पुरुष करें। जनपद की सीमा पर जंगल के अध्यक्षों के संरक्षण में एक हस्तिवन भी स्थापित करना चाहिए। हस्तिवन के अध्यक्षों को आवश्यक है कि वह स्वयं तथा अपने सहयोगी वनपालों के सहयोग से पर्वत, नदी, जलाशय तथा किसी जलमय स्थान से होकर हस्तिवनों के अन्दर जाने वाले मार्गों की भली-भाँति देख-रेख रखे। हाथियों को मारने वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्राणदण्ड की सजा मिलनी चाहिए। म तक हाथी के दाँतों को उखाड़कर जो स्वयं ही राजपुरुषों के सुपुर्द कर दे, उसे सवा चार पण पुरस्कार स्वरूप दिया जाना चाहिए।

१०. दुर्ग

राजा के लिए आवश्यक है कि जनपद की सीमाओं की चारों दिशाओं में युद्धोचित प्राकृतिक दुर्ग का निर्माण करवाये। दुर्ग चार प्रकार के होते हैं-१. औदक २. पार्वत ३. धान्वन और ४. वनदुर्ग। चारों ओर पानी से घिरा हुआ टापू के समान गहरे तालाबों से आव त स्थल प्रदेश **औदकदुर्ग** कहलाता है। बड़ी-बडी चट्टानों अथवा पर्वत की कन्दराओं के रूप में निर्मित दुर्ग **पार्वतदुर्ग** कहलाता है। जल

तथा घास आदि से रहित अथवा सर्वथा ऊसर भूमि में निर्मित दुर्ग **धान्वनदुर्ग** है। इसी प्रकार चारों ओर दलदल से घिरा हुआ अथवा काँटेदार सघन झाड़ियों से परिव त दुर्ग **वनदुर्ग** कहलाता है। इनमें औदक तथा पार्वतदुर्ग आपत्तिकाल में जनपद की रक्षा के उपयोग में लाये जाते हैं। धान्वन और वनदुर्ग वनपालों की रक्षा के लिए उपयोगी होते हैं अथवा आपत्ति के समय इन दुर्गों में भागकर राजा भी अपनी रक्षा कर सकता है।

राजा को चाहिए कि धनोत्पादन के मुख्य केन्द्रों पर बड़े-बड़े स्थानीय दुर्गों का निर्माण करवाये। वास्तुविद्या के विद्वान् जिस प्रदेश को श्रेष्ठ बतायें, वहीं पर नगर बसाना चाहिए, अथवा किसी नदी के संगम पर, बड़े-बड़े तालाबों के किनारे, या कमलयुक्त जलाशयों के तट पर भी नगर बसाये जा सकते हैं। दुर्ग का निर्माण संबंधित भूमि के अनुसार गोल, लम्बा अथवा चौकोर, जैसा भी उचित हो, होना चाहिए। उसके चारों ओर छोटी-छोटी नहरों द्वारा पानी का प्रबन्ध अवश्य रहे। उसके इधर-उधर की भूमि में पैदा होने वाली बिक्री योग्य वस्तुओं का संग्रह तथा उनके विक्रय का प्रबन्ध भी वहाँ होना चाहिए। दुर्ग में आने-जाने के लिए जलमार्ग और स्थल-मार्ग दोनों की सुविधा होनी चाहिए। दुर्ग के चारों ओर एक-एक दंड की दूरी पर तीन खाइयाँ खुदवानी चाहिएं। वे खाइयाँ क्रमशः चौदह, बारह और दस दंड चौड़ी होनी चाहिए। अथवा चौड़ाई का तीसरा हिस्सा गहरी भी हो सकती है। उन खाइयों की तलहटी बराबर चौरस एवं मजबूत पत्थरों से बँधी हो। उनकी दीवारें पत्थर अथवा ईंटों से मजबूत बनी हुई हों। कहीं-कहीं खाइयाँ इतनी कम गहरी हों कि जहाँ से जल बाहर की ओर छलकने लगे अथवा किसी नदी के जल से इन्हें भरा जा सके। उनमें जल के निकलने का मार्ग अवश्य रहना चाहिये। कमल के फूल तथा घड़ियाल आदि जलचर भी उनमें रहें खाई से चार दंड की दूरी पर छह दण्ड ऊँचा, सब ओर से मजबूत और ऊपर की चौड़ाई से दुगुनी नींव वाला एक बड़ा वप्र (प्राकार या फसील) बनवाया जाये। इसके बनवाने में वही मिट्टी काम में लाई जाये, जो खाई से खोदकर बाहर फैंकी गई है। प्राकार तीन प्रकार का होना चाहिए-

१. ऊर्ध्वचय, २. म चप ष्ठ और ३. कुम्भकुक्षिक, अर्थात् क्रमशः ऊपर पतला, नीचे चपटा और बीच में कुम्भाकार। इन प्राकारों को बनवाते समय, इनकी मिट्टी को हाथी और बैलों से अच्छी तरह रौंदवाना चाहिए, जिससे कि मिट्टी बैठकर मजबूत हो जाये। इनके चारों ओर काँटेदार विषैली झाड़ियाँ लगी होनी चाहिएं। प्राकार बन जाने पर यदि मिट्टी बची रह जाये तो उसे उन्हीं गड्ढों में भर देना चाहिए, जहाँ से उसको खोदा गया है, अथवा उस अवशिष्ट मिट्टी से, प्राकार के जो छिद्र रह गए हों, उन्हें भरवा देना चाहिए। वप्र बन जाने पर उसके ऊपर दीवार बनवानी चाहिए। वह दीवार चौड़ाई से दुगूनी ऊँची हो, कम-से-कम बारह हाथ से लेकर चौदह, सोलह, अठारह सम संख्याओं में, अथवा पन्द्रह, सत्रह आदि विषम संख्याओं में, अधिक-से-अधिक चौबीस हाथ तक ऊँची होनी चाहिए। प्राकार का ऊपरी भाग इतना चौड़ा होना चाहिए जिस पर एक रथ आसानी से चलाया जा सके। ताड़ व क्ष की जड़ के समान, म दंग बाजे के समान, बंदर की खोपड़ी के समान आकार वाले ईंट-पत्थरों की कंकरीटों से अथवा बड़े-बड़े शिलाखंडों से प्राकार का निर्माण करवाना चाहिये। लकड़ी का प्राकार कभी भी नहीं बनवाना चाहिए, क्योंकि उसमें सदा आग लगने का भय बना रहता है।

प्राकार के आगे एक ऐसी अट्टालिका बनवाये जिसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई प्राकार के बराबर हो। ऊँचाई के अनुपात से उस पर सीढ़ियाँ भी बनवानी चाहियें। ये अट्टालिकायें एक-दूसरी से तीस दंड की दूरी पर हों। दो अट्टालिकाओं के बीच, चौड़ाई से डेढ गुना लम्बा **प्रतोली** नाम का एक घर बनवाना चाहिए, जिसकी दूसरी मंजिल में जनानखाना रहे। अट्टालिका और प्रतोली के बीच में इन्द्रकोष नामक एक विशिष्ट स्थान बनवाया जाये। वह इतना ही बड़ा हो जिसमें तीन धनुर्धारी संतरी आसानी से बैठ सकें। उसके आगे छिद्रयुक्त एक ऐसा तख्ता लगा रहना चाहिए, जिससे धनुर्धारी बाहर की वस्तु देख सके और भीतर से ही निशाना बाँध सकें, किन्तु बाहर के लोग उन्हें न देख सकें। प्राकार के साथ ही एक ऐसा देवपथ बनवाना चाहिए जो अट्टालक, प्रतोली तथा

इन्द्रकोष के बीच में दो हाथ चौड़ा और प्राकार के पास आठ हाथ चौड़ा हो। इसी प्रकार एक दंड या दो दंड की दूरी पर चार्या अर्थात् प्राकार आदि पर चढ़ने उतरने का स्थान बनवाना चाहिये। प्राकार के ऊपर ही जिस स्थान को कोई न देख सके, **प्रधावितिका** तथा उसके पास ही **निष्कुहद्वार** भी बनवाने चाहिए। बाहर से छोड़े गये बाण बादि से सुरक्षित रहने के लिए छिपने योग्य आड़ को **प्रधावितिका** कहते हैं। उसमें निशाना मारने के लिए जो छिद्र बनाया जाता है, उसको **निष्कुहद्वार** कहा जाता है। प्राकार की बाहरी भूमि में शत्रुओ के घुटनों को तोड़ देने वाले खूँटे, त्रिशूल, अँधेरे गड्ढ़े, लौह-कंटक के ढेर, साँप के काँटे, ताड़पत्रों के समान बने हुए लोहे के जाल, तीन नोकवाले नुकीले काँटे, कुत्ते की दाढ़ के समान लोहे की तीक्ष्ण कीलें, बड़े-बड़े लट्ठे, कीचड़ से भरे हुए गढ़े, आग और जहरीले पानी के गढ़े आदि बनाकर दुर्ग के मार्ग को पाट देना चाहिये।

जिस स्थान पर किले का दरवाजा बनवाना हो, वहाँ पहिले प्राकार के दोनों भागों में डेढ़ दण्ड लम्बा-चौड़ा मण्डप बनाया जाये। तदनन्तर उसके ऊपर प्रतोली के समान छह खम्भे खड़े करके द्वार का निर्माण करवाया जाये। द्वार का निर्माण पाँच दंड परिधि से करना चाहिए, और तदनन्तर एक-एक दंड बढ़ाते हुए अधिक से अधिक आठ दंड तक उसकी परिधि होनी चाहिए; अथवा कुछ विद्वानों के मन से दरवाजा दो दंड का हो या नीचे के आधार के परिणाम से छठा तथा आठवां हिस्सा अधिक ऊपर का दरवाजा बनवाया जाये। दरवाजे के खम्भों की ऊँचाई पन्द्रह हाथ से लेकर अठारह हाथ तक होनी चाहिए। खम्भों की मोटाई उसकी ऊँचाई से छठा हिस्सा होनी चाहिए। मोटाई से दुगुना भाग भूमि में गाड़ दिया जावे और चौथाई भाग खम्भे के ऊपर चूल के लिए छोड़ दिया जावे।

प्रतोलिका के तीन तल्लों में से पहिले तल्ले के पाँच हिस्से किए जायें। उनमें से बीच के हिस्से में बावड़ी बनवाई जाये, उसके दायें बायें शाला और शाला के छोरों पर सीमाग ह बनवाये जायें। शाला के किनारों पर भी आमने-सामने छोटे-छोटे दो चबूतरे बनवायें जायें जिन पर बुर्जे भी हों। शाला और सीमाग ह के बीच में आणि (एक छोटा दरवाजा) होना चाहिए। मकान की दूसरी मंजिल की ऊँचाई पहिली मंजिल की ऊँचाई से आधी होनी चाहिए, उसकी छत के नीचे सहारे के लिए छोटे-छोटे खंभे भी होने चाहिए। मकान की तीसरी मंजिल को **उत्तमागार** कहते हैं, उसकी ऊँचाई डेढ़ दंड होनी चाहिए। उत्तमागार परिमाण द्वारा का त तीयांश होना चाहिए। उसके पार्श्व भाग पक्की ईंटों से मजबूत होने चाहिएं। उसकी बाईं ओर घुमावदार सीढियाँ और दाहिनी और गुप्त सीढ़ियां होनी चाहिएं।

दुर्ग के दरवाजे का ऊपरी बुर्ज दो हाथ लम्बा होना चाहिए। दोनों फाटक तीन या पाँच तख्तों की पर्त के बने हों। किवाड़ों के पीछे दो-दो अर्गलाएं होनी चाहिएं। किवाड़ों को बन्द करने के लिए एक अरत्नी परिमाण (एक हाथ) की इन्द्रकील (चटखनी) होनी चाहिए। फाटक के बीच में पाँच हाथ का एक छोटा सा दरवाजा जुड़ा होना चाहिए। पूरा दरवाजा इतना बड़ा होना चाहिए कि जिसमें चार हाथी एक साथ प्रवेश कर सकें। द्वार की ऊँचाई का आधा, हाथी के नाखून के आकार-प्रकार का, मजबूत लकड़ी का बना हुआ ऐसा मार्ग होना चाहिए जिससे यथा अवसर किले में टहला जा सके। जहाँ जल का अभाव हो वहाँ मिट्टी का ही मार्ग बनवाना चाहिए। प्राकार की ऊँचाई जितना किन्तु उसके त तीयांश जितना, गोह के मुँह के आकार का एक **नगरद्वार** भी बनवाना चाहिए। प्राकार के बीच में एक बावड़ी बनाकर उससे संबद्ध एक द्वार भी बनवाये। उस द्वार को **पुष्करिणी** कहते हैं। जिस दरवाजे के आसपास चार शालाएं बनाई जायें और उस रदवाजे में पुष्करिणी द्वार से ड्योढ़ा दरवाजा लगा हो। उसका नाम **कुमारीपुरद्वार** है। जो दरवाजा दुमंजिला हो एवं जिस पर कंगूरे आदि न लगे हों, उसे **मुण्डकद्वार** कहते हैं। इस प्रकार राजा अपनी भूमि और संपत्ति के अनुसार जैसा उचित समझे, कुछ परिवर्तन करके दरवाजे को बनवाये। दुर्ग के अन्दर की नहरें सामान्य नहरों से तिगुनी चौड़ी बनवायें, जिनके द्वारा हर प्रकार का सामान अन्दर और बाहर ले जाया-लाया जा सके।

पत्थर, कुदाली, कुल्हाड़ी, बाण, हाथियों का सामान, गदा, मुद्गर, लाठी, चक्र, मशीनें, तोपों, लोहारों के औजार, लोहे का बना सामान, नुकीले भाले, बांस, ऊँट की गर्दन के आकार वाले हथियार, अग्निबाण आदि सामान नहर के द्वारा लाया और ले जाया जाता है।

११. नगर

आचार्य कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में नगर निर्माण के विषय में विस्तारपूर्वक लिखा है। उनका मानना है कि राजा को विशेषज्ञ नगरकारों के मार्गदर्शन में सभी प्रकार की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए नगर का निर्माण कराना चाहिये।

अर्थशास्त्र के द्वितीय अधिकरण के चतुर्थ अध्याय में कौटिल्य लिखते हैं कि वास्तुविद्याविशेषज्ञों के निर्देशानुसार जिस भूमि को नगर-निर्माण के लिए चुना जाये उसमें पूरब से पश्चिम की ओर और उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाले तीन-तीन राजमार्ग हों। इन छह राजमार्गों में नगर-निर्माण या ग ह-निर्माण की भूमि का विभाग करना चाहिए। चारों दिशाओं में कुल मिलाकर बारह द्वार हों, जिसमें जल, थल तथा गुप्त मार्ग बने हों। नगर में चार दण्ड (२४ फीट) चौड़ी रथ्याएँ (छोटी गलियाँ) हों। राजमार्ग, द्रोणमुख, स्थानीय राष्ट्र, चरागाह, संयानीय (व्यापारी मंडियां), सैनिक छावनियाँ, श्मशान और गाँवों की ओर जाने वाली सभी सड़कों की चौड़ाई आठ दण्ड (१६ गज) होनी चाहिए। जलाशयों तथा जंगलों की ओर जाने वाली सड़कों की चौड़ाई चार दंड होनी चाहिये। हाथियों के आने जाने का मार्ग और खेतों को जाने वाला रास्ता दो दंड चौड़ा होना चाहिये। रथों के लिए पाँच अरत्नि (ढाई गज) और पशुओं के चलने का रास्ता दो गज चौड़ा होना चाहिए। मनुष्य तथा भेड़-बगरी आदि छोटे पशुओं के लिए एक गज चौड़ा रास्ता होना चाहिये। नगर के सुद ढ़ भूमिभाग में राजभवनों का निर्माण कराना चाहिये; साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यह भूमि चारों वर्णों की आजीविका के लिए उपयोगी हो। ग ह-भूमि के बीच से उत्तर की ओर नवें हिस्से में, निशांत-प्रणिधि प्रकरण में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार, अंतःपुर का निर्माण कराना चाहिये, जिसका द्वार पूरब या पश्चिम की ओर हो। अन्तःपुर के पूर्वोत्तर भाग में आचार्य, पुरोहित के भवन, यज्ञशाला, जलाशय ओर मंत्रियों के भवन बनवाये जायें। अन्तःपुर के पूर्व-दक्षिण भाग में महानस (रसोईघर), हस्तिशाला और कोष्ठागार हों। उसके आगे पूरब दिशा में द्रव, तेल, पुष्पहार, अन्न, घी, तेल की दुकानें और प्रधान कारीगरों एवं क्षत्रियों के निवासस्थान होने चाहिए। दक्षिण-पूरब में भंडागार, राजकीय पदार्थों के आय-व्यय का स्थान और सोने-चाँदी की दुकानें होनी चाहिए। इसी प्रकार दक्षिण-पश्चिम दिशा में शस्त्रागार तथा सोने-चाँदी के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं को रखने का स्थान होना चाहिये। उससे आगे, दक्षिण दिशा में नगराध्यक्ष, धान्याध्यक्ष, व्यापराध्यक्ष, खदानों तथा कारखानों के निरीक्षक, सेनाध्यक्ष, भोजनालय, शराब एवं मांस की दुकानें, वेश्या, नट और वैश्य आदि के निवासस्थान होने चाहिये। पश्चिम-दक्षिण भाग में ऊँटों एवं गधों के गुप्ति-स्थान (तबेले) तथा उनके व्यापार के लिए एक अस्थायी घर बनवाया जाये। पश्चिम-उत्तर की ओर रथ तथा पालकी आदि सवारियों को रखने के स्थान होने चाहिए। उसके आगे, पश्चिम दिशा में ही ऊन, सूत, बाँस और चमड़े का कार्य करने वाले, हथियार और उनके स्थान बनवाने वाले और शूद्र लोगों को बसाया जाना चाहिये। उत्तर-पश्चिम में राजकीय पदार्थों को बेचने-खरीदने का बाजार औषधालय होने चाहिए। उत्तर-पूरब में कोषग ह और गाय, बैल तथा घोड़ों के स्थान बनवाने चाहिएं। उसके आगे, उत्तर दिशा की ओर नगरदेवता, कुलदेवता, लुहार, मनिहार और ब्राह्मणों के स्थान बनवाये जायें। नगर के ओर-छोर जहाँ खाली जगह छूटी है, धोबी, दर्जी, जुलाहे और विदेशी व्यापारियों को बसाया जाये।

दुर्गा, विष्णु, जयंत, इन्द्र, शिव, वरुण, अश्विनीकुमार, लक्ष्मी और मदिरा, इन देवताओं की स्थापना नगर के बीच में करनी चाहिये। कोष्ठागार आदि में भी कुलदेवता या नगरदेवता की स्थापना करनी चाहिये। प्रत्येक दिशा में मुख्य द्वार पर उसके अधिष्ठाता देवता की स्थापना की जाये। उत्तर का

देवता ब्रह्मा, पूर्व का इन्द्र, दक्षिण का यम और पश्चिम का सेनापति (कुमार) होता है। नगर की परिखा से बाहर दो-सौ गज की दूरी पर चैत्य, पुण्यस्थान, उपवन और सेतुबंध आदि स्थानों की रचना और यथास्थान दिग्देवताओं की भी स्थापना की जाये। नगर के उत्तर या पूरब में श्मशान होना चाहिए। दक्षिण दिशा में छोटी जाति वाले लोगों का श्मशान होना चाहिए। जो भी इस नियम का उल्लंघन करे उसे प्रथम साहस-दण्ड दिया जाये। कापालिकों और चाण्डालों का निवास स्थान श्मशानों के ही समीप बनवाया जाये। नगर में बसने वाले परिवारों को उनके अध्यवसाय तथा उनके योग्य भूमि की गु जायश देखकर ही, बसाया जाये। उन खेतों में फूल, फल, साग-सब्जी, कमल आदि की क्यारियाँ बनाई जायें। राजा तथा राजपुरुषों की आज्ञा प्राप्त कर उनमें अनाज तथा विक्रय योग्य वस्तुएँ पैदा की जायें। दशकुलीबाड़ (बीस हलों से जोती जाने वाली भूमि) के बीज सिंचाई के लिए एक कुआँ होना चाहिए। घी, तेल,इत्र, क्षार, नमक, दवा, सूखे साक, भूसा, सूखा मांस, घास, लकड़ी, लोहा, चमड़ा, कोयला, ताँत, विष, सींग, बाँस, छाल, चन्दन या देवदार की लकड़ी, हथियार, कवच और पत्थर, इन सभी वस्तुओं को दुर्ग के अन्दर इतनी तादाद में जमा होना चाहिए कि कई वर्षों तक उपयोग में लाने के लिए पर्याप्त हों। उनमें पुरानी वस्तु की जगह नई वस्तु रख देनी चाहिये। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल इन चारों प्रकार की सेनाओं को अनेक सुयोग्य सेनाध यक्षों के संरक्षण में रखा जाना चाहिये। क्योंकि अनेक सेनाध्यक्षों की नियुक्ति से पहला लाभ तो यह है कि पारस्परिक भय के कारण वे शत्रु में जाकर नहीं मिल पाते और दूसरा लाभ यह है कि एक अध्यक्ष के फूट जाने पर दूसरा अध्यक्ष कार्य संभाल सकता है। इन नगरदुर्गों के निर्माण के नियमों के अनुसार ही जनपद की सीमा के दुर्गों और उनके प्रबन्ध का विधान समझ लेना चाहिये। राजा को चाहिए कि वह नगर में ऐसे लोगों को न बसने दें, जिनके कारण राष्ट्र तथा नगर का नैतिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय स्तर गिरता हो। यदि इनको बसाना ही हो तो सीमा-प्रान्त में बसाया जाये और उनसे राज्यकर वसूल किया जाये।

१२. कोष

कोष राज्य का आवश्यक अंग है। अर्थशास्त्रकार आचार्य कौटिल्य का कहना है कि सारे कार्य कोष पर निर्भर हैं। इसलिए राजा को चाहिये कि सबसे पहिले कोष पर ध्यान दे। राष्ट्र की सम्पत्ति को बढाना, राष्ट्र के चरित्र पर ध्यान रखना, चोरों पर निगरानी रखना, राजकीय अधिकारियों को रिश्वत लेने से रोकना, सभी प्रकार के अन्नोत्पादन को प्रोत्साहित करना, जल-स्थल में उत्पन्न होने वाली प्रत्येक व्यापार-योग्य वस्तुओं को बढ़ाना, अग्नि आदि के भय से राज्य की रक्षा करना, ठीक समय पर यथोचित कर वसूल करना और हिरण्य आदि की भेंट लेना, ये सब कोषव द्धि के उपाय हैं। राजकोष की व द्धि के लिए राजा समाहर्ता नाम का अधिकारी नियुक्त करे। समाहर्त्ता (कलक्टर जनरल) को चाहिए कि वह १. दुर्ग, २. राष्ट्र, ३. खनि, ४. सेतु, ५. वन, ६. व्रज और ७, व्यापार सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण करे।

दुर्ग : शुल्क, दण्ड, पौतव, नगराध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष (पटवारी, कानूनगो, अमीन), मुद्राध्यक्ष, सुराध्यक्ष, सूनाध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, तेल-घी आदि का विक्रेता, सुवर्णाध्यक्ष, दुकान, वेश्या, द्यूत, वास्तुकार, बढ़ई, लुहार, सुनार, मन्दिरों के निरीक्षक, द्वारपाल और नट-नर्तक आदि से लिया जाने वाला धन **दुर्ग** कहलाता है। **राष्ट्र** : सीता, भाग, बलि, कर, वणिक्, नदीपालस्तर, नाव का कर, पट्टन, विंवीत, वर्तनी, रज्जू और चोर रज्जू (चोरों को पकड़ने के लिये ग्रामवासियों से मिला धन) आदि आय के साधन **राष्ट्र** नाम से कहे जाते हैं। **खनि** : सोना, चाँदी, हीरा, मणि, मोती, मूँगा, शंख, लोहा, लवण, भूमि, पत्थर और खनिज पदार्थ **खनि** कहे जाते हैं। **सेतु** : फूल, फल, केला, सुपारी, अन्न के खेत, अदरख और हल्दी के खेत इन सबको **सेतु** कहा जाता है। **वन** : हरिण आदि पशु, लकड़ी आदि द्रव्य और हाथियों के जंगल को **वन** कहा जाता है। **व्रज** : गाय, भैंस, बकरी, भेड़, गधा, ऊँट, घोड़ा, खच्चर और जानवर **व्रज** नाम से कहे जाते हैं, क्योंकि वे अपने गोष्ठ में रहते हैं। **वणिक्पथ** : स्थलमार्ग और जलमार्ग, व्यापार के इन दो मार्गों को **वणिक्पथ** कहा जाता है।

ये सभी आमदनी के साधन हैं। इनके अतिरिक्त मूल (अनाज, साग, सब्जी आदि को बेचकर एकत्र किया गया धन), भाग (पैदावार का षष्ठांश), ब्याजी, परिघ, क्ल प्त, रूपिक, अत्यय आदि भी आमदनी के साधन हैं।

देवपूजा, पित पूजा, दान, स्वस्तिवाचन आदि धार्मिक कृत्य, अन्तःपुर, रसोईघर, दूत प्रेषण, कोष्ठागार, शस्त्रागार, पण्यग्रह, कुप्यग ह का व्यय कर्मान्त, विष्टि, पैदल, हाथी, घोड़ा तथा रथ आदि चारों प्रकार के सेना-संग्रह का व्यय, गाय, भैंस, बकरी आदि उपयोगी पशुओं का व्यय, हरिण, पक्षी तथा अन्य हिंसक जंगली जानवरों की रक्षा के लिए किया गया व्यय और स्थान, लकड़ी, घास आदि के जंगलों की सुरक्षा के लिए किया गया व्यय, ये सभी व्यय के स्थान कहलाते हैं।

राजा के राज्याभिषेक के बाद, उसके प्रत्येक कार्य में 'व्युष्ट' नाम से कहे जाने वाले वर्ष, मास, पक्ष और दिन इन चारों बातों का उल्लेख होना चाहिये, राजवर्ष के तीन विभाग हैं : १. वर्षा, २. हेमन्त और ३. ग्रीष्म, इन तीनों विभागों में प्रत्येक के आठ-आठ पक्ष होते हैं। प्रत्येक पक्ष पन्द्रह दिन का होता है, प्रत्येक ऋतु के तीसरे तथा सातवें पक्ष में एक-एक दिन कम माना जाये, शेष छहों पक्ष पन्द्रह-पन्द्रह दिन के माने जायें, इसके अतिरिक्त एक अधिमास भी माना जाये, यही काल-विभाजन राजकीय कार्यों में प्रयुक्त किया जाना चाहिये। समाहर्त्ता को चाहिए कि वह करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय तथा नीवी आदि कार्यों को उचित रीति से सम्पन्न करे। करणीय ६ प्रकार का होता है १. संस्थान २. प्रचार ३. शरीरावस्थान ४. आदान ५. सर्वसमुदयपिण्ड और ६. संजात। सिद्ध भी ६ प्रकार का होता है १. कोशार्पित २. राजहार ३. पुरव्यय ४. परसंवत्सरानुव त्त ५. शासनमुक्त और ६. मुखाज्ञप्त। शेष के भी ६ भेद हैं १. सिद्धप्रकर्मयोग २. दण्डशेष ३. बलात्कृत प्रतिस्तब्ध ४. अवस ष्ट ५. असार और ६. अल्पसार।

आय तीन प्रकार की है १. वर्तमान, २. पर्युषित और ३. अन्यजात। प्रतिदिन की आमदनी को **'वर्तमान'** आय कहा जाता है, पिछले वर्ष का बकाया अथवा शत्रुदेश से प्राप्त धन **'पर्युषित'** आय है, भूले हुए धन की स्म ति, अपराध-स्वरूप प्राप्त धन, कर के अतिरिक्त अन्य उपायों या प्रभुत्व से प्राप्त धन, काजी-हाउस से प्राप्त धन, भेटस्परूप प्राप्त धन, शत्रुसेना से अपहृत धन और लावारिस का धन **'अन्यजात'** आय कहलाती है। इसके अतिरिक्त सैनिक खर्च से बचा हुआ धन, स्वास्थ्य विभाग के व्यय से बचा हुआ धन और इमारतों के बनवाने से बचा हुआ धन **'व्ययप्रत्याय'** कहलाता है। यह भी एक प्रकार की आय है। बिक्री के समय वस्तुओं की कीमत बढ़ जाने से, निषिद्ध वस्तुओं के बेचने से, बाट-तराजू आदि की बेईमानी से तथा खरीदारों की प्रतिस्पर्धा से प्राप्त धन भी आमदनी का धन है।

व्यय चार प्रकार का होता है : १. नित्य २. नित्योत्पादिक ३. लाभ और ४. लाभोत्पादिक। प्रतिदिन के नियमित व्यय को **'नित्य'** व्यय कहते हैं। पाक्षिक, मासिक तथा वार्षिक आय के लिए व्यय किया गया धन **'लाभ'** कहलाता है। नित्य तथा लाभ नामक व्यय से अधिक खर्च हो जाने वाले धन को क्रमशः **'नित्योत्पादिक'** तथा **'लाभोत्पादिक'** कहा जाता है। सब तरह के आय-व्यय का भली-भाँति हिसाब करके भी बचत रूप में निकलने वाला धन **'नीवी'** कहलाता है, जो दो प्रकार का होता है १. प्राप्त और २. अनुव त्त। **प्राप्त** वह, जो खजाने में जमा हो और **अनुव त्त** वह, जो खजाने में जमा किया जाने वाला हो। समाहर्त्ता को चाहिए कि वह ऊपर निर्दिष्ट विधियों, साधनों एवं मार्गों से राजकीय धन का संग्रह करे और आय-व्यय में बचत-हानि का लेखा-जोखा ठीक रखे। यदि किसी अवस्था में भविष्य की विशेष आय की आशा में पहिले अधिक व्यय भी करना पड़े तो वैसा करके आय को बढ़ाये।

राजा के लिये यह आवश्यक है कि समाहर्ता द्वारा संग्रहीत राजकोष की सुरक्षा के लिए गुणवान् सन्निधाता अर्थात् कोषाध्यक्ष को नियुक्त करे। सन्निधाता को चाहिए कि वह कोषग ह, द श्यग ह, कोष्ठागार, पण्यग ह, शस्त्रागार और कारागार का निर्माण करवाये। सीलरहित स्थान में बावड़ी के

समान एक चौरस गड्ढा खुदवाकर चारों ओर से उसकी दीवारों और फर्श को मोटी मजबूत शिलाओं से चुनवाना चाहिए। उसके बीच में मजबूत लकड़ियों से बने हुए पिंजरे के समान अनेक कोठरियाँ हों; उसमें तीन मंजिलें हों; तीनों मंजिलों में बढ़िया दरवाजे तथा सुन्दर फर्श हों; ऊपर-नीचे चढ़ने-उतरने के लिए उसमें लिफ्ट लगा हो, उसके दरवाजों पर देवताओं की मूर्तियाँ अंकित हों, इस प्रकार का एक भूमिग ह (अण्डरग्राउण्ड) बनवाना चाहिए। उस भूमिग ह के ऊपर एक कोषग ह बनवाना चाहिए, उस पर भीतर-बाहर से बन्द की जाने वाली अर्गलाएं हों, एक बरामदा हो, पक्की ईंटों से उसको बनाया गया हो, एवं वह चारों ओर अनेक पदार्थों से भरे हुए मकानों से घिरा हो। जनपद के मध्यभाग में प्राणदण्ड पाये पुरुषों के द्वारा, आपत्ति में काम आने वाला एक ध्रुवनिधि (गुप्त खजाना) बनवाना चाहिए। पक्की ईंटों से चुना हुआ, चार भवनों से परिव त, एक दरवाजे वाला अनेक कक्षों वाला एवं मंजिलों से युक्त और चारों ओर खुले हुए खम्भों वाले चबूतरे से घिरा हुआ पण्यग ह (विक्रेय वस्तुओं को रखने का घर) तथा कोष्ठागार (कोठार) बनवाना चाहिए। अनेक लम्बे दालानों से युक्त, चारों ओर अनेक कोठरियों से घिरी हुई दीवारों वाला, भीतर की ओर कुप्यग ह बनवाना चाहिए। उसी में एक तहखाना बनवाकर शस्त्रागार बनवाया जाये। धर्मस्थ (न्यायाधीश) और महायाम (समाहर्त्ता आदि) से सजा पाये हुये लोगों को काराग ह में रखना चाहिये। काराग ह में स्त्री-पुरुषों के लिए अलग-अलग स्थान होने चाहिए। उसके बहिर्मार्ग तथा चारों ओर की अच्छी तरह रक्षा होनी चाहिए। उक्त सभी कोशग ह आदि स्थानों में शाला, परिखा और कूओं की तरह स्नानागार भी बनवाने चाहिए। अग्नि और विष से भी उनकी रक्षा की जानी चाहिए। विष की रक्षा के लिए बिल्ली और नेवला आदि को पालना चाहिएं। इन स्थानों की भलीभाँति रक्षा की जानी चाहिए। उनके अधिष्ठित देवताओं जैसे, कोषग ह का कुबेर, पर्ण्यग ह तथा कोष्ठागार की श्री, कुप्यग ह का विश्वकर्मा, शस्त्रागार का यम और बन्दीग ह का वरुण आदि की पूजा करवानी चाहिए। वर्षाजल को मापने के लिए कोष्ठागार में एक ऐसा कुण्ड बनवाया जाना चाहिए जिसके मुँह का घेरा एक अरत्नि (चौबीस अंगुल) हो।

कोष्ठागाराध्यक्ष, प्रत्येक वस्तु के विशेषज्ञों की सहायता से नये ओर पुराने का भेद समझकर रत्न, चन्दन, वस्त्र, लकड़ी, चमड़ा, बाँस आदि उपयोगी वस्तुओं का संग्रह करे। यदि कोई व्यक्ति असली रत्न की जगह नकली रत्न दे और छल से असली रत्न का अपहरण कर ले जाये तो अपहरण करने वाले और कराने वाले,दोनों को उत्तम साहसदंड दिया जाये। चन्दन आदि वस्तुओं में कपट करने पर मध्यम साहसदंड दिया जाना चाहिए। वस्त्र, लकड़ी और चमड़ा जैसे पदार्थां में छल करने वाले व्यक्ति से वैसी ही दूसरी वस्तु ले ली जाये या उसका मूल्य ले लिया जाये और उतना ही उससे दण्डरूप में वसूल कर लिया जाये। सिक्कों के पारखी पुरुषों द्वारा स्वर्णमुद्रा का संग्रह किया जाना चाहिए। सिक्कों में से जो नकली मालूम हो उसको तत्काल ही काट दिया जाये, जिससे उसको व्यवहार में न लाया जा सके। नकली सिक्कों को लाने वाले पुरुष भी प्रथम साहसदण्ड के अपराधी हैं। धान्याधिकारी पुरुष को चाहिए कि वह शुद्ध, पूरा तथा नया अन्न ले। यदि वह ऐसा न करे तों उससे दुगुना दण्ड वसूल किया जाये।

इसी प्रकार पण्य, कुप्य और आयुध के सम्बन्ध में भी नियम समझने चाहिए। प्रत्येक अधिकारी पुरुष को, उसके सहकारियों को तथा उन दोनों के बीच काम करने वाले पुरुषों को, पहली बार किसी वस्तु का अपहरण करने पर क्रमशः एक पण, दो पण और चार पण का दण्ड दिया जाना चाहिए। यदि वे फिर भी अपहरण करें तो क्रमानुसार उन्हें प्रथम साहस, मध्यम साहस और उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिए। इस पर भी वे न मानें तो उन्हें प्राणदण्ड दिया जाये।

कोषाध्यक्ष यदि सुरंग आदि उपाय से कोष का अपहरण करे तो उसे प्राणदण्ड दिया जाये। इसमें अधीनस्थ लोगों को उसका आधा दण्ड दिया जाये। यदि कोष का अपहरण करने में अधीनस्थ लोगों का हाथ न हो तो उन्हें दण्ड न दिया जाये। केवल उनकी निंदा तथा उपहास कर उनको दुत्कारा जाये। यदि चोर सेंध लगाकर चोरी करे तो चित्रवध का दण्ड दिया जाये। कोषाध्यक्ष को चाहिए

कि विश्वासी पुरुषों के सहयोग से ही वह धन-संग्रह आदि का कार्य करे। कोषाध्यक्ष को चाहिए कि वह जनपद तथा नगर से होने वाली आय को अच्छी तरह से जाने। इस सम्बन्ध में उसे इतनी जानकारी होनी चाहिए कि यदि उससे सौ वर्ष पीछे की आय का लेखा-जोखा पूछा जाये तो तत्काल ही वह उसकी समुचित जानकारी दे सके। बचे हुए धन को वह सदा कोष में दिखाता रहे।

आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में राजकोष के नष्ट होने के कारणों का उल्लेख भी किया है। बुद्धिमान राजा के लिए यह आवश्यक है कि उन कारणों को जानकर कोष को नष्ट होने से बचाये। आचार्य कौटिल्य के अनुसार - कोषक्षय के आठ कारण हैं : १. प्रतिबन्ध, २. प्रयोग, ३. व्यवहार, ४. अवस्तार, ५. परिहापण, ६. उपभोग, ७. परिवर्तन और ८. अपहार। राजकर को वसूल करना, वसूल करके उसे अपने अधिकार में न रखना, और अधिकार में करके भी उसे खजाने में जमा न करना, यह तीन प्रकार का **प्रतिबंध** है। जो अध्यक्ष इन माध्यमों से कोष का क्षय करे, उस पर क्षत राशि से दशगुना जुर्माना करना चाहिए। कोषधन का स्वयं ही लेन-देन करके व द्धि का यत्न करना **प्रयोग** कहलाता है। ऐसे अधिकारी पर दुगुना जुर्माना करना चाहिये। कोष के द्रव्य से स्वयं ही व्यापार करना **व्यवहार** कहलाता है। ऐसा करने पर भी दुगुना दण्ड देना चाहिए। राजकर वसूल करने वाला अधिकारी, नियत समय से कर-वसूली न करके रिश्वत लेने की इच्छा से, मियाद बीत जाने का भय देकर प्रजा को तंग करके जो धन एकत्र करता है उसे **अवस्तार** कहते हैं। ऐसा करने पर उसे नुकसान की राशि से पाँच गुना दण्ड देना चाहिए। जो अध्यक्ष अपने कुप्रबंध के कारण कर की आय को कम कर देता है और व्यय की राशि को बढ़ा देता है, उस क्षय को **परिहापण** कहते हैं। ऐसा करने पर अध्यक्ष को क्षय से चौगुना दण्ड दिया जाये। राजकोष के द्रव्य को स्वयं भोग करना तथा दूसरों को भोग कराना **'उपभोग'** क्षय है। इसके अपराध में अध्यक्ष को, यदि वह रत्नों का उपभोग करता है तो प्राणदण्ड, सारद्रव्यों का उपभोग करता है तो मध्यम साहस दण्ड और फल्गु एवं कुप्य आदि पदार्थों का उपभोग करता है तो, उससे द्रव्य वापिस लेकर उसकी लागत का दण्ड दिया जाना चाहिये। राजकोष के द्रव्यों को दूसरे द्रव्यों से बदल लेना **परिवर्तन** कहलाता है। इस कार्य को करने वाले अध्यक्ष के लिए भी उपभोग-क्षय के समान ही दण्ड दिया जाये। प्राप्त आय को रजिस्टर में न चढ़ाना, नियमित व्यय को रजिस्टर में चढ़ाकर भी खर्च न करना और प्राप्त नीवी के सम्बन्ध में मुकर जाना, यह तीन प्रकार का **अपहार** है। अपहार के द्वारा कोषक्षय करने वाले अध्यक्ष को हानि से बारहगुना दण्डित करना चाहिये।

अध्यक्ष, चालीस प्रकार के उपायों से राजद्रव्य का अपहरण कर सकते हैं। पहले फसल में प्राप्त हुए द्रव्य को दूसरी फसल आने पर रजिस्टर में चढ़ाना, दूसरी फसल की आदमनी का कुछ हिस्सा पहली फसल के रजिस्टर में चढ़ा देना, राजकर को रिश्वत लेकर छोड़ देना, राजकर से मुक्त देवालय, ब्राह्मण आदि से कर वसूल करना, कर देने पर भी उसको रजिस्टर में न चढ़ाना, कर न देने पर भी उसको रजिस्टर में भर देना, कम प्राप्त हुए धन को रिश्वत लेकर पूरा दर्ज कर देना पूरे प्राप्त हुए धन को अधूरा लिख देना, जो द्रव्य प्राप्त हुआ है उसकी जगह दूसरा ही द्रव्य भर देना, एक पुरुष से प्राप्त हुए धन को रिश्वत लेकर, दूसरे के नाम दर्ज कर देना, योग्य वस्तु को न देना, जो वस्तु देने योग्य नहीं है, उसका दे देना, समय पर किसी वस्तु को न देना, रिश्वत लेकर असमय में ही उस वस्तु को दे देना, थोड़ा देकर भी बहुत लिख देना, बहुत देकर भी थोड़ा लिख देना, अभीष्ट वस्तु की जगह दूसरी ही वस्तु दे देना, जिस व्यक्ति को देने के लिए कहा गया है, उसके बदलें में किसी दूसरे को ही दे देना, राजधन को वसूल करके उसे खजाने में जमा न करना, राजकर को वसूल न करके, रिश्वत लेकर, उसे जमा-रजिस्टर में चढ़ा देना, राजाज्ञा से वस्त्रादि क्रय करके तत्काल ही उनका मूल्य चुकता न करके एकांत में कुछ रकम देना, अधिक मूल्य से क्रीत वस्तुओं की रकम कम करके रजिस्टर में लिखना, सामूहिक कर वसूली को अलग-अलग व्यक्ति से लेना, अलग-अलग व्यक्ति से लिये जाने वाले कर को सामूहिक रूप में वसूल करना, बहुमूल्य वस्तु को अल्पमूल्य की वस्तु से बदल देना, अल्पमूल्य की वस्तु को बहुमूल्य वस्तु से बदलना, रिश्वत

लेकर बाजार में वस्तुओं की कीमत बढ़ा देना, वस्तुओं का भाव बढ़ा देना, दो दिन का वेतन दिया हो तो चार दिन बढ़ाकर लिख देना, चार दिन का वेतन दिया हो तो दो दिन घटाकर लिख देना, मलमासरहित संवत्सर को मलमास युक्त बना देना, महीने के दिन घटा-बढ़ाकर लिख देना, नौकरों की संख्या बढ़ाकर लिख देना, एक जरिये से हुई आमदनी को दूसरे जरिये से दर्ज कर देना, ब्राह्मणादि को स्वीकृत धन में से कुछ स्वयं ले लेना, कुटिल उपाय से अतिरिक्त धन वसूल करना, सामूहिक वसूली में से न्यूनाधिक्य रूप में धन लेना, वर्णविषमता दिखाकर धन का अपहरण कर लेना, जहाँ मूल्य निर्धारित न हो, वहाँ दाम बढ़ाकर लाभ उठाना, तोल में कमी-बेशी करके उपार्जन करना, नाप में विषमता पैदा करके धन कमाना और घ त से भरे हुए सौ बड़े घड़ों की जगह सौ छोटे घड़े दे देना, राजकीय धन को अपहरण करने के ये चालीस तरीके हैं।

यदि किसी अध्यक्ष के सम्बन्ध में राजा को यह सन्देह हो जाये कि उसने अनुचित उपायों से राजकीय धन का अपहरण किया है तो राजा को चाहिये कि उस विभाग के प्रधान निरीक्षक, कोषाध्यक्ष, लेखक, कर लेने वाले और कर दिलाने वाले सलाहकारों को अलग-अलग बुलाकर यह पूछे कि उनके अध्यक्ष ने गबन किया है या नहीं। यदि उनमें से कोई झूठ बोले तो उसे गबन करने वाले अपराधी के समान ही दण्ड दिया जाये। अपने सारे राज्य में राजा यह घोषणा करा दे कि अपराधी अध्यक्ष ने जिस जिसका गबन किया है, उसकी सूचना राजदरबार को भेज दी जाये। इस प्रकार सूचना मिलने पर राजा, प्रजा की उस हानि को पूरा करे। यदि अध्यक्ष के विरुद्ध एक साथ ही अनेक शिकायतें हों और उनमें से वह किसी को भी स्वीकार न करे तो उसका एक भी अपराध साबित हो जाने पर, सभी शिकायतों का अभियोग उस पर लगाया जाये। यदि अभियुक्त कुछ अपराधों को स्वीकार करता है और कुछ से मुकर जाता हे, तो उससे पूरे सबूत मांगे जायें। गबन किये गये बहुत से धन के सम्बन्ध में पूरे सबूत नहीं मिलते, कुछ ही धन के सम्बन्ध में सबूत मिल पाते हों, तो उस पर पूरे गबन का अभियोग लगाना चाहिये। यदि कोई निष्पक्ष, राजहितेच्छु व्यक्ति किसी अध्यक्ष के गबन की सूचना देता है, तो अपराध सिद्ध हो जाने पर, उस अपहृत धन का छठा भाग सूचना देने वाले को दिया जाना चाहिये। यदि सूचना देने वाला व्यक्ति राजकर्मचारी हो तो उसे बारहवाँ भाग दिया जाना चाहिये। यदि अभियोग बहुत से धन का सिद्ध हो चुका है, किन्तु मिला कुछ ही धन है तो सूचना देने वाले व्यक्ति को उस प्राप्त धन में से ही हिस्सा देना चाहिये। यदि अपराध सिद्ध न हो सके तो सूचना देने वाले व्यक्ति को उचित शारीरिक या आर्थिक दण्ड दिया जाना चाहिये। किसी भी अपराधी को क्षमा न किया जाये। अभियोग साबित हो जाने पर सूचना देने वाला व्यक्ति अदालत से अपने को बरी करा सकता है, किन्तु रिश्वत लेकर यदि वह अपराधी के पक्ष में हो जाता है, और सच्चा बयान नहीं देता है तो उसे प्राणदण्ड दिया जाना चाहिये।

१३. आय-व्यय का लेखा

आचार्य कौटिल्य ने राज्य की अर्थव्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए राजा को यह निर्देश दिया है कि वह अपने राज्य में होने वाली आय और व्यय का विधिवत् हिसाब रखने के लिए अक्षपटल अध्यक्ष अर्थात् आय-व्यय निरीक्षक नियुक्त करे।

आय-व्यय का निरीक्षक, अक्षपटल का निर्माण कराये, उसका दरवाजा पूरब या उत्तर दिशा की ओर होना चाहिए, उसमें लेखकों के बैठने के लिए कक्ष और आय-व्यय की निबन्ध-पुस्तकों को रखने के लिये नियमित व्यवस्था होनी चाहिये। उसमें विभिन्न विभागों की नामावली, जनपद की पैदावार एवं उसकी आमदनी का विवरण, खान तथा कारखानों के आय-व्यय का हिसाब, कर्मचारियों की नियुक्ति, अन्न एवं सुवर्ण आदि का उपयोग, प्रयाम (अनाज के गोदाम), व्याजी (कम तोलने के कारण व्यापारियों व दण्डरूप में हुई आमदनी), योग, स्थान, वेतन, विष्टि आदि का ब्यौरा, रत्नसार एवं कुप्य आदि पदार्थों के मूल्य, उनका गुण, तौल, उनकी लम्बाई-चौड़ाई, ऊँचाई एवं असली मूलधन का उल्लेख, देश, ग्राम, जाति, कुल सभा-सोसाइटियों के धर्म, व्यवहार, चरित्र तथा

परिस्थितियों का उल्लेख, राजकीय सहायता से जीवित रहने वाले प्रग्रह, निवासस्थान, भेंट, परिहार एवं वेतन आदि का उल्लेख, महारानी तथा राजपुत्रों द्वारा रत्न एवं भूमि आदि की प्राप्ति का विवरण, राजा, महारानी तथा राजपुत्रों को नियमित रूप से दिये जाने वाले धन के अतिरिक्त दिया हुआ धन, उत्सवों तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी सुधारों से प्राप्त धन का उल्लेख और मित्र राजाओं तथा शत्रु राजाओं के साथ संधि-विग्रह आदि के निमित्त प्राप्त हुआ अथवा खर्च हुए धन का विवरण आदि सभी ऐसे विषय हैं जिनका उल्लेख निबन्धपुस्तक में किया जाना चाहिये।

इसके बाद सभी उत्पत्ति-केन्द्रों एवं विभागों के लिए किए जाने वाले, किए गए तथा बचे हुए आय, व्यय नीवी, कार्यकर्त्ताओं की उपस्थिति, प्रचार, चरित्र और संस्थान आदि सब बातों को रजिस्टर में दर्ज करके राजा को दे देना चाहिये। उत्तम, मध्यम और निकृष्ट जैसे भी कार्य हों उनके अनुसार ही उनके अध्यक्ष नियुक्त किये जाने चाहिये। एक ही कार्य को करने वाले अनेक व्यक्तियों में उसी व्यक्ति को अध्यक्ष नियुक्त किया जाना चाहिए जो निपुण, गुणी, यशस्वी हो और जिसे दण्ड देने के पश्चात् राजा को पश्चात्ताप न करना पड़े।

यदि कोई अध्यक्ष राजकीय धन का गबन करके उसको अदा करने में असमर्थ हो तो वह धन क्रमशः उसके हिस्सेदार, उसके जामिन, उसके अधीनस्थ कर्मचारी, उसके पुत्र एवं भाई, उसकी स्त्री एवं लड़की अथवा उसके नौकर अदा करें। तीन-सौ-चौवन दिन-रात तक एक कर्मसंवत्सर होता है। उसकी समाप्ति आषाढ़ी पूर्णिमा को समझनी चाहिये। इसी वर्ष-गणना के हिसाब से प्रत्येक अध्यक्ष का वेतन दिया जाना चाहिये। यदि अध्यक्ष की नियुक्ति वर्ष के मध्य में हुई है तो उसको कम वेतन और यदि उसने पूरे वर्ष कार्य किया है तो उसे पूरा वेतन दिया जाना चाहिये। प्रत्येक कर्मचारी के कार्य का ब्यौरा उपस्थिति रजिस्टर से देखना चाहिये। अध्यक्ष को चाहिये कि वह जनपद के समस्त कार्यालयों की कार्य-व्यवस्था का ज्ञान गुप्तचरों से प्राप्त करे। यदि वह ऐसा नहीं करता तो अपनी अज्ञानता के कारण वह धनोत्पादन में हानिकर सिद्ध होता है। १. अज्ञान २. आलस्य ३. प्रमाद ४. काम ५. क्रोध ६. दर्प, ७. लोभ, ये धनोत्पादन में विघ्न डालने वाले दोष हैं। अधिक परिश्रम से कतराने के कारण आलस्य के द्वारा, गाना-बजाना तथा स्त्रियों में आसक्त रहने के कारण प्रमाद के द्वारा, निन्दा, अधर्म तथा अनर्थ के कारण भय द्वारा, किसी कार्यार्थी पर अनुग्रह करने के कारण काम द्वारा, किसी क्रूरता के कारण क्रोध द्वारा, विद्या, धन एवं राजप्रिय होने के कारण दर्प द्वारा और नाप-तौल तर्कना तथा हिसाब में गड़बड़ कर देने के कारण लोभ के द्वारा, कर्मचारी लोग आमदनी में बाधा डाल देते हैं।

आचार्य मनु के अनुयायी विद्वानों का कहना है कि 'जो कर्मचारी ऊपर निर्दिष्ट दोषों के वशीभूत होकर जितना अपराध करे उसको उसी क्रम से दण्ड दिया जाना चाहिये' अर्थात् यदि वह अज्ञान के कारण अपराध करता है तो उसे उतना ही दण्ड दिया जाना चाहिये जितने का कि उसने नुकसान किया है, यदि वह आलस्य के कारण नुकसान करता है तो दुगुना, प्रमाद के कारण नुकसान करता है तो तिगुना दण्ड दिया जाना चाहिये। आचार्य पराशर के मतानुयायियों का कहना है कि 'अपराध करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को आठगुना दण्ड देना चाहिये, क्योंकि सभी अपराध एक समान हैं।' आचार्य ब हस्पति के अनुयायी विद्वानों का मत है कि 'सभी अपराधियों को दसगुना दण्ड दिया जाना चाहिए।' शुक्राचार्य के अनुयायी कहते हैं कि 'सबको बीसगुना दण्ड मिलना चाहिये।' किन्तु आचार्य कौटिल्य का कहना है कि जो जितना अपराध करे तदनुसार ही उसे दण्ड दिया जाना चाहिये।'

सभी कार्यालयों के अध्यक्ष आषाढ़ के महीने में वर्ष की समाप्ति पर प्रधान कार्यालय में आकर हिसाब का मिलान करें। उन आये हुए लोगों को तब तक एक-दूसरे से बातचीत न करनी दी जाये तथा मिलने न दिया जाये, जब तक कि उनके पास राजकीय मोहर लगे रजिस्टर तथा व्यय से बचा हुआ धन मौजूद हैं। सर्वप्रथम आय-व्यय को सुनकर उसके पास जो बचत शेष हो उसे ले लिया जाये। अध्यक्ष की बताई हुई आय-राशि से यदि रजिस्टर का हिसाब अधिक निकले ओर उसी प्रकार बताए हुए व्यय की अपेक्षा रजिस्टर में उससे कम निकले तो अध्यक्ष पर, उसके द्वारा बताई गई

कम-अधिक रकम का आठगुना जुर्माना किया जाये। यदि आमदनी से अधिक अथवा व्यय से कम रकम रजिस्टर में चढ़ी हो तो ऐसी दशा में अध्यक्ष को दण्ड न दिया जाये, वरन् आय-व्यय की जो कमी-बेसी हुई है उसी को दे दी जाये। जो अध्यक्ष निश्चित समय में अपने रजिस्टर तथा शेष धन आदि को लेकर प्रधान कार्यालय में उपस्थित नहीं होता उसके हिसाब में जितना बाकी निकले उसका दस गुना जुर्माना उस पर किया जाना चाहिये। यदि प्रधान अध्यक्ष निर्धारित समय पर क्षेत्रीय कार्यालयों में पहुंच जाये और वहां के विभागीय अध्यक्ष कार्यालय का हिसाब-किताब दिखाने में असमर्थ हों तो उन्हें प्रथम साहस-दण्ड दिया जाना चाहिये। इसके विपरीत यदि प्रधान अध्यक्ष निर्धारित समय पर न पहुँच पावे तो उसे दुगुना प्रथम साहस-दण्ड देना चाहिये।

राजा के महामात्र आदि प्रधान कर्मचारी आय-व्यय तथा नीवी सम्बन्धी सारी राजकीय व्यवस्थाएं प्रजाजनों को समझायें-बुझायें। यदि उनमें से कोई झूठा प्रचार करे तो उसे उत्तम साहस-दण्ड दिया जाना चाहिये। द्रव्य की वसूली करने वाला राजकर्मचारी यदि निर्धारित समय पर द्रव्य-वसूली न कर सके तो उसे एक मास का ओर समय दिया जाये। यदि फिर भी वह द्रव्य संग्रह करके राजकोष में न पहुँचा सके तो उस पर प्रति मास के हिसाब से दो-सौ रुपया जुर्माना कर देना चाहिये। जिस अध्यक्ष के पास थोड़ा राजदेय धन बाकी हो, निर्धारित समय से केवल पाँच दिन तक उसकी प्रतीक्षा की जाये। तदनन्तर उसे भी दंडनीय समझा जाये। कोषधन ओर कोषरजिस्टर लाने वाले अध्यक्ष की परीक्षा पहिले धर्म के द्वारा ली जाये, अर्थात् उसे देखा जाये कि वह धर्मात्मा है या दम्भी, फिर उसके व्यवहार को देखा जाये, तदनन्तर उसके आचार-विचार, उसकी पूर्वस्थिति, उसके कार्य एवं हिसाब-किताब और अन्त में उसके कार्यो को पारस्परिक मिलान करके उसकी परीक्षा ली जाये, गुप्तचरों द्वारा भी उसके भेद जाने जायें।

अध्यक्ष को चाहिये कि वह प्रतिदिन, प्रति पाँच दिन, प्रतिपक्ष, प्रतिमास, प्रति चार मास और प्रतिवर्ष के क्रम से राजकीय आय-व्यय एवं नीवी का लेखाजोखा साफ-सुथरे ढंग से रखे अर्थात् वर्षारंभ से, पहले एक दिन का हिसाब, फिर एक साथ पाँच दिन का हिसाब, फिर एक साथ पन्द्रह दिन का हिसाब, फिर एक साथ एक मास का हिसाब, और अंत में एक साथ पूरे वर्ष का हिसाब करके रखे।

आय का लेखा निर्दोष और साफ रहे, एतदर्थ रजिस्टर में राजवर्ष (मास, पक्ष, दिन), देश, काल, मुख (आयमुख, आयशरीर), उत्पत्ति, अनुव त्ति प्रमाण, कर देने वाले का नाम, दिलानेवाले अधिकारी का नाम, लेखक का नाम और लेने वाले का नाम, इस प्रकार स्तंभ बने होने चाहिए। व्यय का लेखा तैयार करने के लिए रजिस्टर में इस प्रकार के खाने होने चाहिए : व्युष्ट, देश, काल, मुख, लाभ व्यय का कारण, देय वस्तु का नाम, मिलावटी द्रव्य में अच्छाई-बुराई का उल्लेख, तौल, किसकी आज्ञा से व्यय किया गया, किसको दिया गया, भाण्डागारिक और लेने वाले का पूरा विवरण। इसी प्रकार नीवी का लेखा; व्युष्ट, देश, काल, मुख, द्रव्य का स्वरूप, द्रव्य की विशेषता, तौल, जिस पात्र में द्रव्य रखा जाये और द्रव्य का संरक्षक आदि विवरणों के आधार पर तैयार करना चाहिये। यदि क्लर्क अर्थलाभ को रजिस्टर में दर्ज नहीं करता है, राजकीय आज्ञा का उल्लंघन करता है, अथवा आय-व्यय के सम्बन्ध में विपरीत कल्पनाएं भी करता है तो उसको प्रथम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये। क्रम के विरुद्ध, उलट-पलट कर विपरीत लिख देना, किसी वस्तु को बिना समझे-बूझे ही लिख देना, एक वस्तु को दुबारा चढ़ा देना, ऐसी गड़बड़ी करने वाले कर्मचारी को बारह पण का दण्ड दिया जायें यदि नीवी के सम्बन्ध में लेखक की ऐसी गड़बड़ी पायी जाये तो चौबीस पण दण्ड, उसका गबन करे तो साठ पण दण्ड दिया जाना चाहिये। झूठ बोलने वाले को चोर जितना दण्ड देना चाहिये। हिसाब-किताब के सम्बन्ध में पीछे से किसी बात को स्वीकार करने पर चोरी से दुगुना दण्ड और पूछे जाने पर किसी बात का उत्तर न देकर बाद में उसका उत्तर देने पर भी यही दंड देना चाहिये। राजा को चाहिये कि वह अपने अध्यक्ष के थोड़े अपराध को क्षमा कर दे और यदि वह पूर्वापेक्षया आमदनी में थोड़ी भी व द्धि कर लेता है तो उसके प्रति प्रसन्नता एवं संतोष प्रकट करे। महान् उपकार करने वाले अध्यक्ष का कृतज्ञ होकर राजा को सदैव उसका सम्मान करना चाहिये।

१४. शुल्क (चुंगी)

आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में अन्तर्देशीय व्यापार की व्यवस्था तथा उससे राजकोष की व द्धि के लिए राजा द्वारा शुल्क अर्थात् चुंगी के विधान का निर्देश दिया है। इस कार्य के लिए राजा को शुल्काध्यक्ष की नियुक्ति करनी चाहिये।

यह शुल्काध्यक्ष शुल्कशाला का निर्माण करवावे, उसके पूर्व तथा उत्तर की ओर, प्रधान द्वार के पास, शुल्कशाला की पहिचान के लिए एक पताका लगवा दे। शुल्कशाला में चार-पाँच कर्मचारियों की नियुक्ति की जानी चाहिये, जो माल को लाने ले जाने वाले व्यापारियों का नाम, उनकी जाति, उनका निवास स्थान, माल का विवरण और उस पर कहाँ-कहाँ मुहर लगी है, इसका विवरण लिखें जिन व्यापारियों के माल पर मुहर न लगी हो, उनको जितनी चुंगी (शुल्क) देनी चाहिये, उन पर उसका दुगुना जुर्माना किया जाये। जिन व्यापारियों ने अपने माल पर नकली मुहर लगाई है उन पर चुंगी का आठ गुना जुर्माना ठोकना चाहिये। जो व्यापारी मुहर लगाकर उसको मिटा दे, उन्हें तीन घड़ी तक ऐसे स्थान पर बैठाया जाये, जहाँ पर कि आने-जाने वाले सभी व्यापारी उनके अपराध को जान सकें। माल का नाम बदलने वाले व्यापारी पर सवापण दण्ड करना चाहिये। शुल्कशाला की ध्वजा के नीचे एकत्र होकर व्यापारी लोग अपने माल का नाम, उसकी कीमत और उसके वजन आदि की बोली बोलें। तीन बार आवाज लगाने पर जो भी खरीद ले, उसे माल दे देना चाहिये, यदि खरीदने वालों में होड़ लग जाये तो माल का मूल्य बढ़ा कर बोली बोली जाये और निर्धारित आमदनी से अधिक मूल्य एवं उसकी चुंगी राजकीय कोष में जमा कर दी जाये। अधिक चुंगी देने के डर से जो व्यापारी अपने माल और उसके मूल्य को कम करके बताये, उस अतिरिक्त माल को राजा ले ले, अथवा व्यापारी से आठ गुना शुल्क वसूल किया जाये। यही दण्ड उस व्यापारी को भी देना चाहिये जो कि बढ़िया माल की जगह, उसी प्रकार की दूसरी पेटी आदि में घटिया माल रख कर उसका मूल्य कम कर दे अथवा जो व्यापारी नीचे के हिस्से में अच्छा माल भर कर ऊपर से सस्ता माल भर दे और उसी के अनुसार चुंगी दे। प्रतिद्वन्द्विता के कारण जो ग्राहक किसी चीज का मूल्य बढ़ा दे, उस बढ़े हुए मूल्य को राजा ले ले अथवा उस मूल्य बढ़ाने वाले खरीददार से दुगुनी चुँगी वसूल कर ली जाये।

मित्रता या रिश्वत के कारण यदि अध्यक्ष किसी अपराधी व्यापारी को माफ कर दे तो अपराध के अनुपात से आठ गुना दण्ड अध्यक्ष को दिया जाये। इसलिए माल की बिक्री तौल कर अथवा गिन कर भली भाँति करनी चाहिये, जिससे छल-कपट न हो सके। कोयला, नमक आदि कम चुंगी वाली वस्तुओं पर अन्दाज से ही कर लेना चाहिये, उन्हें तौलने की आवश्यकता नहीं है। जो व्यापारी छिपकर किसी छल से चुँगी दिए बिना ही चुंगीघर को लाँघ कर चले जायें उन्हें नियत शुल्क से आठ गुना अधिक शुल्क देना चाहिये। असली रास्ता छोड़ कर इधर-उधर से निकल जाने वाले लकड़हारे और ग्वाले आदि पर भी निगरानी रखनी चाहिये।

विवाह सम्बन्धी, विवाह में प्राप्त, सदावर्त्त या क्षेत्रों के लिये दिया गया दान, यज्ञकर्म एवं जन्मोत्सव के लिए भेजा हुआ देवपूजा, मुंडन, जनेऊ, गोदान और व्रत आदि धार्मिक कार्यों से सम्बद्ध माल पर चुंगी न ली जानी चाहिये। किन्तु चुंगी के भय से जो व्यक्ति अपने माल का सम्बन्ध उक्त कार्यों से बतायें तो उसे चोरी का दण्ड दिया जाये। यदि कोई व्यापारी चुंगी दिए माल के साथ बिना चुंगी दिए माल को निकाल ले जाये या इसी प्रकार बिना मुहर लगे माल को निकाल ले जाये, अथवा चुंगी दिये माल में बिना चुंगी का माल मिला दे, उस व्यापारी का वह बिना चुंगी का माल जब्त कर दिया जाये और उस पर उतना ही दण्ड निर्धारित किया जाये। जो व्यापारी चुंगी देने के भय से अपने अच्छे माल को घटिया बताकर धोखे से निकाल ले जाने की चेष्टा करे, उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये। शस्त्र, कवच, लोहा, रथ, रत्न, अन्न और पशु आदि किसी भी प्रतिबन्ध लगी वस्तु को लाने-ले जाने वाले व्यापारी को पूर्व निर्धारित दण्ड दिया जाये और उसकी उस वस्तु

को जब्त कर लिया जाये। इनमें से कोई वस्तु यदि बाहर लायी जाये तो वह बिना चुंगी दिये भी नगर-सीमाओं के बाहर बेची जा सकती है। सीमा रक्षक अन्तपाल को चाहिये कि वह माल ढोने वाली प्रति गाड़ी से मार्गरक्षा-कर के रूप में सवा पण कर वसूल करे। घोड़े, खच्चर, गधे आदि एक खुर वाले पशुओं की गाड़ी पर एक पण, बैल आदि पशुओं पर आधा पण, बकरी, भेड़ आदि छोटे पशुओं पर चौथाई पण और कंधे पर भार ढोने वाले व्यक्तियों पर एक माष (तांबे का सिक्का) कर लेना चाहिये। यदि किसी व्यापारी की कोई वस्तु गुम हो गई या चोरी हो गई हो तो अन्तपाल उसका पता लगाये। नष्ट हुई वस्तु मिल जाये तो दे दे, अन्यथा अपने ही पास से दे। अन्तपाल को चाहिये कि वह विदेशी व्यापारियों के माल की भली-भाँति जाँच कर उस पर मुहर लगाये और रमन्ना (पास) काटकर उन्हें चुंगी के अध्यक्ष के पास भेज दे। उन विदेशी व्यापारियों के साथ गुप्त व्यापारी का भेष धारण किये राजा का खुफिया व्यापारियों के सम्बन्ध की सारी सूचनाएं पहले ही राजा तक पहुँचा दे। इस सूचना को तथा व्यापारियों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी राजा, शुल्काध्यक्ष के पास भेज दे, जिससे कि राजा की जानकारी पर विश्वास किया जा सके और राजा की बात को विश्वासपूर्वक कहा जा सके। तदनुसार शुल्काध्यक्ष व्यापारियों से कहे 'आप लोगों में से अमुक-अमुक व्यापारी के पास इतना घटिया और इतना बढ़िया माल है, आप लोगों को कुछ भी छिपाना नहीं चाहिये। देखिये, राजा का इतना प्रभाव है कि उससे कोई बात छिपी नहीं रह सकती है।' जो व्यापारी घटिया माल को छिपाने का यत्न करे, उस पर चुंगी से आठ गुना जुर्माना और जो बढ़िया माल को छिपाये उसका सारा माल जब्त कर लेना चाहिये। राष्ट्र को हानि पहुंचाने वाले विष या फल आदि माल को राजा नष्ट कर दे और यदि प्रजा का उपकार करने वाला तथा कठिनाई से प्राप्त होने वाला धान्य आदि माल हो तो उस पर चुंगी न लगाई जाये, जिससे उस माल का अपने देश में अधिक आयात हो। शुल्कव्यवहार के तीन प्रकार हैं : १. बाह्य, २. आभ्यन्तर, और ३. आतिथ्य। इनके दो भाग हैं : १. निष्क्राम्य और २. प्रवेश्य। बाहर जाने वाले माल पर लगाई गई चुंगी को निष्क्राम्य और बाहर से आने वाले माल पर लगाई चुंगी को प्रवेश्य कहते हैं। आयात माल पर सामान्यतः उसकी लागत का पाँचवाँ हिस्सा चुंगी ली जानी चाहिये। फूल, फल, साग, गाजर, मूल, शकरकन्द, धान्य, सूखी मछली और मांस, इन वस्तुओं पर उनकी लागत का छठा हिस्सा चुंगी लेनी चाहिये। शंख, हीरा, मणि, मुक्ता, प्रवाल और हार, इन मूल्यवान् वस्तुओं की चुंगी उनके विशेषज्ञों, पारखियों अथवा विशिष्ट रूप से नियत समय के लिए नियत वेतन पर नियुक्त व्यक्तियों द्वारा निर्धारित करनी चाहिये। मोटे तथा महीन रेशमी कपड़ों, कीमखाब, सूती कवच, हरताल, मैनसिल, हिंगुल, लोहा, गेरू, चन्दन, अगर पीपल, मादक बीजों से निकाला गया द्रव्य, शराब, हाथदाँत, म गचर्म, रेशमी तागे, बिछौना, ओढ़ना, अन्य रेशमी वस्त्र और बकरी तथा भेड़ की ऊन के बने कपड़ों आदि पर उनके मूल्य का पन्द्रहवाँ हिस्सा चुंगी ली जानी चाहिये।

१५. अध्यक्ष व उनके कार्य

आचार्य कौटिल्य ने सम्पूर्ण राज्य के प्रशासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए अपने अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ के अध्यक्ष प्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में विभिन्न कार्यों को देखने वाले अध्यक्षों और अधिकारियों का उल्लेख किया है, जिनमें से कुछ प्रमुख पदाधिकारियों और उनके कार्यों का सामान्य परिचय यहाँ प्रस्तुत है :-

सन्निधाता - कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित राज्य व्यवस्था में कोषाध्यक्ष को सन्निधाता कहा जाता था। इसका मुख्य कार्य भिन्न भिन्न प्रकार के राज धन को सुरक्षित रखने के लिए कोशग ह, पण्यग ह तथा कोष्ठागार, कुप्यग ह तथा आयुधागार और बन्धनागार आदि का निर्माण कराना था। राजकोष को सुरक्षित रखना उसका मुख्य उत्तरदायित्व था।

समाहर्त्ता - तत्कालीन राज्य व्यवस्था में समाहर्त्ता राजकोष का स चय करता था। राज्य में होने वाली कृषि तथा व्यापार आदि में से राज कर को वसूलने वाला यह मुख्य अधिकारी था। वर्तमान व्यवस्था में इसे कलक्टर (जनरल) कहते हैं।

अक्षपटलाध्यक्ष - राजकीय धन के आय व्यय का लेखा जिस स्थान पर लिखा जाता था उसे अक्षपटल कहा जाता था। अक्षपटल नामक कार्यालय का मुख अधिकारी अक्षपटलाध्यक्ष कहलाता था। इस लेखा कार्यालय के निर्माण से लेकर वहाँ होने वाले लेखा सम्बन्धी समस्त कार्यों का उत्तरदायित्व अक्षपटलाध्यक्ष का ही होता था।

आकाराध्यक्ष - यह राज्य की विभिन्न प्रकार की खानों का कार्य देखने वाला उच्चाधिकारी था। यह शुल्बशास्त्र, धातुशास्त्र, रसायनशास्त्र तथा मणिशास्त्र आदि विभिन्न विषयों का ज्ञाता होता था। इसका कार्य विभिन्न धातुओं की खानों का पता लगाना तथा वहाँ से यथाविधि धातु आदि का संग्रह करना होता था। पुनः भिन्न भिन्न धातुओं के उपयोग की व्यवस्था करने वाले भिन्न-भिन्न अध्यक्ष होते थे, यथा - लौह से बनने वाले पदार्थों का व्यवहार देखने वाला लौहाध्यक्ष, सिक्के ढलवाने वाला लक्षणाध्यक्ष, नमक की व्यवस्था देखने वाला लवणाध्यक्ष तथा सुवर्ण और चाँदी का व्यवहार सम्भालने वाला सुवर्णाध्यक्ष आदि।

कोष्ठागाराध्यक्ष - कोष्ठ का मूल अर्थ है धान्य, तेल, घी आदि खाने योग्य पदार्थ है। इन सब पदार्थों के संग्रह की तथा उनके रख-रखाव की व्यवस्था देखने वाला कोष्ठागाराध्यक्ष होता था।

पण्याध्यक्ष - विक्रय के योग्य राज द्रव्य को अर्थशास्त्र में पण्य कहा गया है। उस पण्य द्रव्य के क्रय और विक्रय की व्यवस्था को देखने वाला अधिकारी पण्याध्यक्ष होता था।

कुप्याध्यक्ष - मूल्यवान् व क्षों की लकड़ी, छाल तथा बाँस आदि सब कुप्य कहलाते हैं। इनकी व्यवस्था देखने वाला अधिकारी कुप्याध्यक्ष कहलाता था।

आयुधागाराध्यक्ष - सब प्रकार के आयुधों के निर्माण तथा उन्हें सुरक्षित रखने वाला उत्तरदायी अधिकारी आयुधागाराध्यक्ष होता था।

पौतवाध्यक्ष - सब प्रकार की तौल माप आदि का काम देखने वाले अधिकारी को पौतवाध्यक्ष कहा जाता था।

शुल्काध्यक्ष - राज्य में बाहर से आने वाली तथा राज्य से बाहर जाने वाली व्यापारिक वस्तुओं पर नियमानुसार शुल्क अर्थात् चुंगी वसूलने वाला मुख्याधिकारी शुल्काध्यक्ष कहलाता था।

सूत्राध्यक्ष - सूत्राध्यक्ष का कार्य सभी प्रकार के सूत तथा उनसे बनने वाले वस्त्र-निर्माण की व्यवस्था देखना होता था।

सीताध्यक्ष - कृषि योग्य भूमि को सीता कहा जाता है। कृषि कर्म के निरीक्षक के लिए नियुक्त मुख्याधिकारी सीताध्यक्ष होता था। सब प्रकार की बीजों का संग्रह करवाना, उन्हें सुरक्षित रखना तथा यथा समय किसानों को देना, वर्षा आदि का पूर्वानुमान, हुई वर्षा का मान, तदनुसार कृषि कर्म की व्यवस्था आदि देखना इसके प्रमुख कार्य होते थे।

नावाध्यक्ष - राज्य के घाटों पर आने जाने वाली नौकाओं से टैक्स लेने वाला राजकीय पुरुष नावाध्यक्ष कहलाता था।

गो ध्यक्ष - दुधारु पालतू पशुओं की व्यवस्थाओं का निरीक्षण करने वाला राजकीय अधिकारी गो ध्यक्ष कहा जाता था।

अश्वाध्यक्ष - राजकीय अश्वों की व्यवस्था देखने वाला मुख्य अधिकारी।

हस्त्यध्यक्ष - राजकीय हस्तियों का प्रबन्ध करने वाला प्रमुख अधिकारी।

रथाध्यक्ष - सेना में काम आने वाले रथों की व्यवस्था देखने वाला प्रमुख अधिकारी।

पत्यध्यक्ष - पैदल सेना का प्रधान अधिकारी।

सेनापति - राजकीय सेना का प्रधान अधिकारी सेनापति होता था। अश्वाध्यक्ष, हस्त्यध्यक्ष, रथाध्यक्ष तथा पत्यध्यक्ष उसी के मार्गदर्शन में कार्य करते थे।